RNI No. 7127/60

डाक पंजीयन संख्या - Jaipur City / 411 2017-19

संघशक्ति

मासिक समाचार पत्रिका

वर्ष : 56 | अंक : 05 | कुल पृष्ठ : 36 | 4 मई, 2019

शुल्क एक प्रति : 15/- | वार्षिक : 150/- रुपये | पंचवर्षीय 700/- रुपये | दस वर्षीय 1300/- रुपये

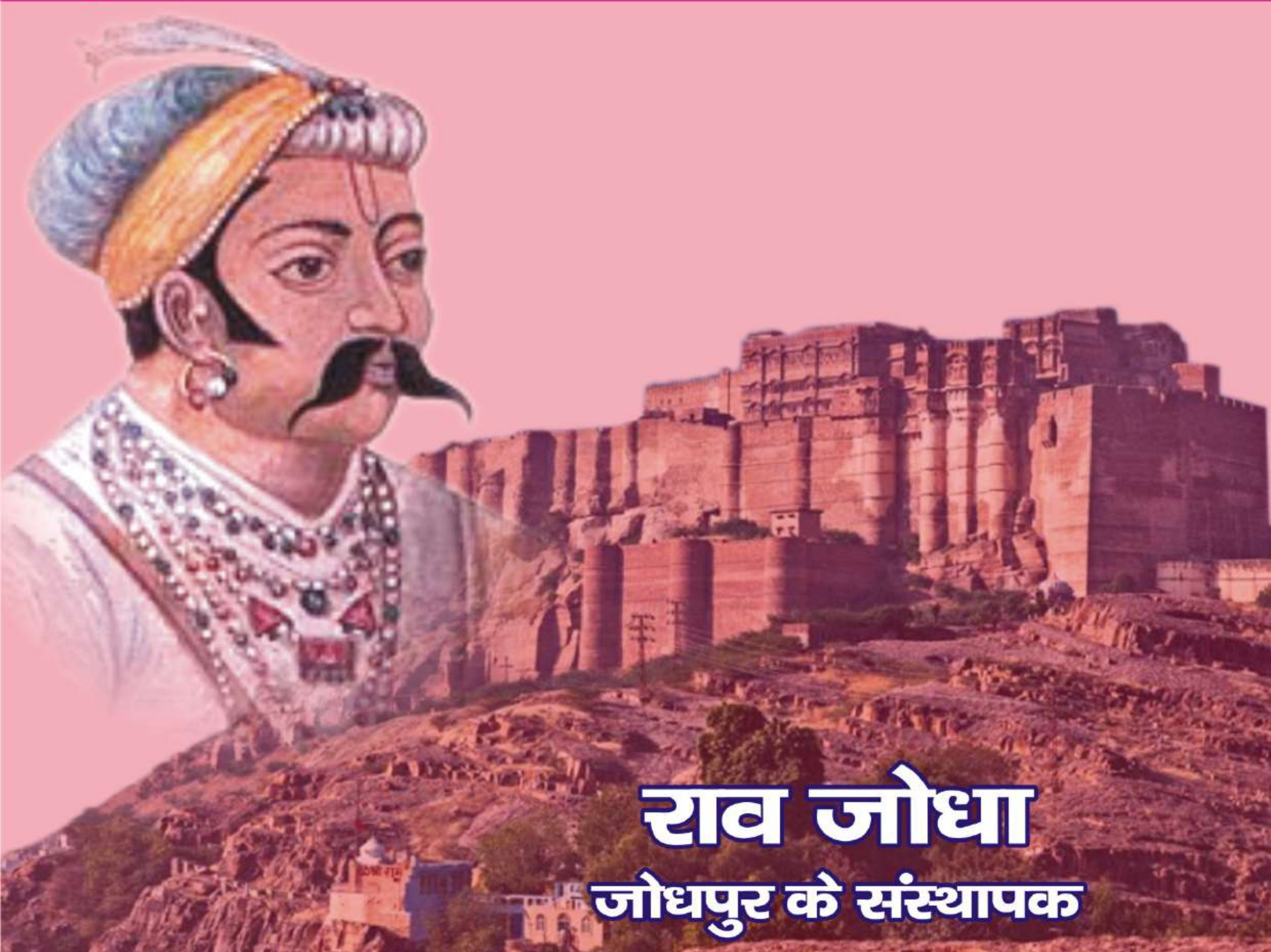

HITKARI & SWARAJ

हितकारी मेडिकोज

राजकीय चिकित्सालय के सामने, बाड़मेर-344001 राजस्थान

फोन : 02982226666

प्रो. पृथ्वी सिंह राठौड़

आजाद सिंह राठौड़

सिद्धार्थ सिंह राठौड़

-: सम्बंधित फर्म :-

हितकारी & स्वराज इंटरप्राइजेज प्राइवेट लिमिटेड

हितकारी प्रोजेक्ट्स प्राइवेट लिमिटेड

संघशक्ति

4 मई, 2019

वर्ष : 56 अंक-05

-: सम्पादक :-

लक्ष्मणसिंह बेण्यांकाबास

शुल्क - एक प्रति : 15/ रुपये, वार्षिक : 150 रुपये, पंचवर्षीय : 700/- रुपये , दस वर्षीय : 1300 /- रुपये

विषय - सूची

❍ समाचार संक्षेप	✍	04
❍ चलता रहे मेरा संघ	✍ श्री भगवानसिंह रोलसाहबसर	05
❍ जोधपुर के संस्थापक शौर्य पुरुष राव जोधाजी	✍ श्री राजेन्द्रसिंह लीलिया	07
❍ पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)	✍ श्री चैनसिंह बैठवास	09
❍ साधना की प्रतिक्रियाएँ	✍ स्वामी यतीश्वरानन्द	12
❍ संन्यास	✍ ओशो	14
❍ शक्ति तत्त्व और पूजा पद्धति	✍ स्वामी सारदानन्द	19
❍ पुरुषार्थी बनें	✍ संकलित	22
❍ विचार-सरिता (त्रिचत्वारिंशत लहरी)	✍ श्री विचारक	24
❍ अहंशून्यता पर ही गुरु-कृपा	✍ संकलित	28
❍ संविधान	✍ स्वामी गोपाल आनन्द बाबा	30
❍ अपनी बात	✍	32

समाचार संक्षेप

शिविर :

इसी माह बांसवाड़ा जिले के गनोड़ा में श्री क्षत्रिय युवक संघ का उच्च प्रशिक्षण शिविर 18 मई से 28 मई तक होने जा रहा है। संघ के प्राथमिक व माध्यमिक शिविर वर्ष भर विभिन्न क्षेत्रों में छुट्टियाँ देखकर होते रहते हैं। विद्यार्थियों के लिये गर्मी की छुट्टियाँ लम्बी अवधि की होने के कारण उच्च प्रशिक्षण शिविर इन्हीं छुट्टियों में लगाया जाता रहा है। कई बार दूसरे मौसम में भी उच्च प्रशिक्षण शिविर लगते रहे हैं।हमारी साधारण जीवन चर्या से अलग ग्यारह दिन तक एक ही वातावरण में प्रशिक्षण प्राप्त करना अधिक प्रभावी रहता है। ग्यारह दिन तक समस्त सांसारिक विषयों से दूर रहकर एक ही प्रशिक्षण में ध्यान केन्द्रित रहता है जो प्रभावी संस्कार देता है। यह प्रभाव हर व्यक्ति पर एक ही मात्रा में नहीं पड़ता। किस पर कितना प्रभाव पड़ता है यह इस बात पर निर्भर रहता है कि उसकी अपनी जीवन परिवर्तित करने की इच्छा कितनी बलवती है; उस इच्छा के अनुकूल वह संकल्प-पूर्वक पूरी तत्परता से लगता है या नहीं, साधना मार्ग पर आने वाले कष्टों और व्यवधानों से संघर्षशील है या नहीं, आदि-आदि। इसीलिए एक ही जैसा प्रशिक्षण दिए जाने पर भी उसका प्रभाव अलग-अलग मात्रा में होता है।

जिस स्वयंसेवक ने पहले प्राथमिक शिविर आदि नहीं किए हैं और सीधा उच्च प्रशिक्षण शिविर में ही आना चाहता है, उसे यह शिविर करने की स्वीकृति नहीं दी जाती है। उच्च प्रशिक्षण शिविर के लिये कम से कम दो प्राथमिक शिविर और एक माध्यमिक प्रशिक्षण शिविर किए जाने के बाद ही पात्र माना जाता है। इन शिविरों में प्रशिक्षण प्राप्त स्वयंसेवक उच्च प्रशिक्षण शिविर का पूरा लाभ ले पाएगा। जो व्यक्ति सीधा ही उच्च प्रशिक्षण शिविर में आता है, वह ग्यारह दिन का शिविर का कष्टपूर्ण जीवन जी नहीं पाता और बहुत कुछ ग्रहण भी नहीं कर पाता। एक नया व्यक्ति प्राथमिक शिविर करता है और दूसरा महिनों तक निरंतर शाखा में आने के बाद कोई प्राथमिक शिविर करता है, तो निरंतर शाखा में आने वाले स्वयंसेवक पर शिविर का प्रभाव पड़ता है, वैसी नये व्यक्ति पर सम्भावना नहीं। हाँ, जो मात्र दर्शक के रूप में, सम्मिलित होने के लिये नहीं, केवल देखने के लिये आता है, वह कष्ट तो नहीं पाता, देख क्या पाता है वह उसकी लगन पर निर्भर है।

शिविर की व्यवस्था हेतु तैयारियाँ वहाँ के स्थानीय लोग कर रहे हैं तो शिविरार्थियों की सूचियाँ हर प्रान्त में बन गई है। पात्रता लगाना इसलिए भी आवश्यक है कि अन्यथा संख्या बहुत अधिक हो जाती है। विशेष परिस्थिति में पात्रता में कुछ रियायत के लिये भी पत्र आ रहे हैं, पर इसे बढावा देना उचित नहीं।

बालिकाओं का शिविर 31 मई से 6 जून तक पुष्कर में होने जा रहा है। यहाँ भी कम से कम एक शिविर पहले किया हुआ हो, यह पात्रता रखी गई है। छोटी बालिकाएँ आ जाती हैं तो वे पूरी तरह निभ नहीं पाती, तब वातावरण में व्यवधान आता है। इसलिए लेकर आने वालों को इस बात का पूरा ध्यान रखना चाहिए। राजस्थान के अलावा गुजरात, उत्तरप्रदेश से भी शिविर में आने वाली बालिकाओं की सूचना आ रही है।

लोकसभा चुनाव :

पूरे देश में चुनाव एक साथ सम्पन्न करवाना बहुत मुश्किल है, इसलिए लोकसभा के चुनाव सात चरणों में सम्पन्न हो रहे हैं। चुनावों में झगड़े आदि में तो बहुत कमी आई है परन्तु एक-दूसरे के लिये बोल बड़े ओछे हो गए हैं। हम हमारा दायित्व समझें और अपने दायित्व को उत्तम रीतिसे निभावें, हमारा ध्यान इसी पर रहना चाहिए।

आतंकवाद :

देश में आतंकवाद के विरुद्ध जन-मानस में आक्रोश है। लेकिन हमारे ही देश के अलगाववादी लोग आतंकवादियों को आर्थिक सहयोग दे रहे हैं। इस देश की नागरिकता रखते हुए भारत से अलग होने के सपने देखने वाले इस देश के विरुद्ध ही काम करते हैं। ऐसे लोगों पर न्यायिक प्रक्रिया से मुकदमें चलें, किसी प्रकार की रियायत के बारे में न सोचा जाय और उनसे जुड़े लोगों कोभी यथायोग्य सजा मिले, यह देश की सुरक्षा के लिये आवश्यक है।

चलता रहे मेरा संघ

(उच्च प्रशिक्षण शिविर भारतीय ग्राम्य आलोकान आश्रम बाड़मेर में 18 मई, 2018 को संघप्रमुख श्री भगवानसिंहजी रोलसाहबसर द्वारा शिविरार्थियों हेतु उद्‌बोधित प्रभात संदेश)

योग: कर्मसु कौशलम्-कुशलता पूर्वक किया गया कार्य ही योग बन जाता है, वही योग है। योग का अर्थ है जोड़। योग का अर्थ है मिलन। हम जो प्रयत्न कर रहे हैं-एक जैसा गणवेश, पंक्ति में चलना, एक की आज्ञा का पालन करना, यह बाह्य सौंदर्य है, यह स्थूल योग है। दो शरीर एक से हो सकते हैं, दो शरीर मिलकर एक नहीं हो सकते। यह जो सारी बाह्य एकता है, इसमें सौंदर्य है, फिर भी यह योग नहीं है। प्रभु से मिलन का जो मार्ग है उसका यह प्रारम्भिक भाग है क्योंकि कर्म को करने में स्थूल शरीर की आवश्यकता होती है और यदि शरीर स्वस्थ नहीं हो, वह सम्यक रूप से काम नहीं कर सकता हो तो कर्म को कुशलता के साथ नहीं किया जा सकता। उस कर्म में दक्षता नहीं आ सकती।

यह शरीर स्थूल शरीर है। एक सूक्ष्म शरीर भी है। जिसके बारे में आपने कई बार सुना है, मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार। यह चतुष्ट्य कहलाते हैं। कई चारों को न मानकर तीन को मानते हैं पर सामान्यतया चतुष्टय को ही माना जाता है। यह चतुष्ट्य हमको दिखाई नहीं देता। वह शरीर के साथ नहीं हो और शरीर उनके साथ नहीं हो-मन के साथ नहीं हो, बुद्धि के साथ नहीं हो, चित्त और अहंकार के साथ नहीं हो तो कर्म कुशलता से नहीं किया जा सकता। मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और शरीर ये शिष्ट न हो जाएँ तो हम चाहे चैतन्य को प्राप्त हो जाएँ, लेकिन चारों अस्तित्व अलग-अलग हैं और शरीर अलग है। आपको जो अभ्यास यहाँ करवाया जाता है, स्थूल चीजों को एक करने का प्रयत्न किया जा रहा है। अभ्यास के द्वारा कर्म करने के लिये।

भगवान ने गीता के अठारहवें अध्याय में बताया है कि कर्म कैसे घटित होता है। कर्म घटित होने के पाँच कारण बताए गये हैं। अधिष्ठान अर्थात जिसके आश्रय कर्म किया जाता है, कर्ता अर्थात कर्म को करने वाला, करण अर्थात् साधन, नाना प्रकार की चेष्टाएँ तथा दैव। दैव का अर्थ है हमारा प्रारब्ध, हमारा भाग्य अथवा परमेश्वर की सहायता। ये पाँच हों तथा सम्यक रूप से इनका सदुपयोग हो तो कर्म घटित होता है। तब कर्म में कुशलता आ सकती है। चार कारण होते हों लेकिन यदि दैव साथ में नहीं है तो अनेकों बार विफलता मिलती है। कुशलता होते हुए भी कर्म घटित नहीं होता।

साधक का जीवन तो कर्म के प्रति समर्पित होना है। मुझे तो कर्म करना है। सफलता की कामना की और कर्म में विकार उत्पन्न हुआ, तब कुशलता नहीं आ सकेगी। आपको यहाँ संघ के द्वारा जो काम दिया गया है उसे करें। आपका घटप्रमुख संघप्रमुख का प्रतिनिधि है। उसकी आज्ञा का पालन करना, शिक्षक की आज्ञा का पालन करना, जैसा वे करवाएँ वैसा करना तब कुशलता आ सकती है। लेकिन उसमें अगर थोड़ा व्यवधान आएगा तो क्या आएगा? यह कि जहाँ राम है वहाँ काम नहीं, जहाँ काम है वहाँ राम नहीं। काम का अर्थ है कामना। शिविर में आते हैं कुछ कामना लेकर तो कर्म की कुशलता, कर्म की दक्षता नहीं आएगी। जो कर्म दिया गया है वह ईश्वर का कार्य समझकर करना है। उसमें किन्तु, परन्तु, न लगाएँ, जैसा कहा जाय वैसा का वैसा ही करें तो यह कर्म पूजा बन जाता है। आपने स्कूलों में पढा होगा 'वर्क इस वर्शिप' यहाँ का कार्य इस भाव से किया जाता है, इस ढंग से किया जाता है तो यह पूजा ही है। यदि मन में आए कि मैं घटप्रमुख को मान देता हूँ तो घटप्रमुख को भी मुझे मान देना चाहिए। यह विकृति है और इससे कर्म में कुशलता नहीं आएगी, दक्षता नहीं आएगी।

जब कर्म की कुशलता आती है तो परमेश्वर से

योग हो जाता है। श्री क्षत्रिय युवक संघ के कार्य को हम दक्षतापूर्वक करते हैं तो यह भगवान का काम बन जाता है। इस कार्य को यदि हम किसी कामना के साथ करते हैं तो फिर वहाँ राम नहीं है। ऐसा कार्य आपको भटकाएगा। कर्म की कुशलता ही योग है और योग का अर्थ है मिलन। यह मिलन शरीरों का नहीं, हमारी आत्माएँ एक दूसरे को परस्पर पहचानने लग जायँ कि जो मुझ में है, वही इसमें है, जो मुझ में है वही संसार में है। तब योग घटित होता है। आत्मा का परमात्मा से मिलन ही वास्तविक योग है। आत्मा रूप में हम शरीर, मन, बुद्धि आदि को लेकर कर्म में लगे हुए हैं। इसकी कुशलता इसका कौशल तभी बन पाएगा जब हमारी किसी प्रकार की कामना इसमें नहीं होगी।

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत शतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

यह जो मंत्र हम बोलते हैं-करणीय कर्म करते रहो, नियत कर्म करते रहो, यथार्थ कर्म करते रहो, तो उसमें हमारा किसी प्रकार का लिपायमान नहीं है। तब यह योग का मार्ग है, योग का मार्ग है वह भगवान का मार्ग है, ईश्वर का मार्ग है। श्री क्षत्रिय युवक संघ की सम्पूर्ण साधना को संपूर्ण योग मार्ग कहा है। इस संपूर्ण योग मार्ग पर जो चलता है वह योग को प्राप्त होगा ही। यह दिखाई न देने वाला ईश्वर की प्राप्ति का अदृश्य, अलख उद्देश्य है। श्री क्षत्रिय युवक संघ हमारे जीवन को सम्यक बनाने के लिये अभ्यास करवाता है। जिसका जीवन सम्यक है, वह संयमित भी है, वह नियंत्रित भी है। उसमें किसी प्रकार का दोष नहीं रहता, वह दोष रहित है, दम्भ रहित है, द्वेष रहित है और उसके जीवन में विनय है। यही तो सज्जनता है, भगवान ऐसे सज्जन लोगों की रक्षा करने का वादा हमसे करते हैं,

परित्राणाय साधूनाम विनाशायच दुष्कृताम्।

हमारे दुष्कर्म को भगवान माफ नहीं करते, क्षमा नहीं करते। कई बार आप गलती करते हैं और तुरन्त कहते हैं-'सॉरी', यह सॉरी कहने की संस्कृति हमारी नहीं है। क्षमा याचना करने का अर्थ है कि जो भूल हुई है, उसकी जीवन में दुबारा आवृति नहीं होगी, पुनरावृत्ति नहीं होगी। मुँह से कह देना कि माफ कर दें तो आप गलती के लिये क्षमा याचना कर रहे हैं, लेकिन वास्तविक क्षमा याचना तो यह है कि हमने जो गलती की है उसका प्रायश्चित करें। यह जो मेरे से भूल हुई है, वह पुनः न हो इसके लिये कष्टपूर्ण जीवन जीकर उस कर्म को परिष्कृत कर देना चाहिए। भूल किससे नहीं होती, कर्म करते-करते गलती कौन नहीं करता है, हम सभी गलती करते हैं। जो भी कर्म करता है, उससे गलती भी होती है। अपनी गलतियों का अहसास करना और वह फिर कभी ना हो इसके लिये प्रायश्चित करना, अपने आपको कभी क्षमा नहीं करना, दूसरों से क्षमा की आशा न रखना, तब उस कर्म में स्वतः ही कौशल पैदा होगा, कुशलता पैदा होगी और योग घटित होगा। हमारा संपूर्ण जीवन दक्ष जीवन बने, कुशलतापूर्वक जीया जाने वाला जीवन बने, आज के मंगल प्रभात में श्री क्षत्रिय युवक संघ का यही हमारे लिये संदेश है।

समय आने पर हर साधक को मार्गदर्शन मिलना चाहिए, पर मार्गदर्शन मिलते ही व्यक्तित्व और जीवन में जो निखार आता है, उसके कारण चारों ओर से संस्कारहीन हितैषियों का आक्रमण हो जाता है। कभी-कभी हमारे हितैषी ही हमारे लिये कितने अभिशाप बन जाते हैं इसकी कल्पना भी नहीं होती और इसीलिए हमले की खतरों की सावधानी के कारण अनेक बार हम मार्गदर्शन से भी वंचित रह जाते हैं।

- पू. तनसिंहजी

जोधपुर के संस्थापक शौर्य पुरुष राव जोधाजी

– राजेन्द्रसिंह लीलिया

जोधपुर के संस्थापक राव जोधा न केवल योद्धा थे, बल्कि सामाजिक राजनीतिक परिस्थितियों को समझने की दूरदृष्टि रखने वाले शासक थे। उन्होंने मध्ययुगीन प्रतिरक्षा प्रणाली और सामरिक दृष्टि से मण्डोर को राजधानी के रूप में असुरक्षित माना और चिड़ियानाथ जी की टूंक पर 12 मई, 1459 को एक सुदृढ़ किले का शिलान्यास किया व नूतन राजधानी के रूप में जोधपुर शहर बसाया।

मारवाड़ के शासक राव रणमल के पुत्र राव जोधा का जन्म 28 मार्च, 1416 भादवा बदी 8, विक्रम संवत् 1472 में हुआ। राव जोधा जोधपुर के प्रथम प्रतापी शासक थे। राव जोधा का जीवन कठिनाईयों, चुनौतियों और संघर्ष की एक अनूठी गाथा है। मारवाड़ के इतिहास में जोधपुर के संस्थापक राव जोधा को सदैव एक वीर योद्धा, रणनीतिकार, कुशल कूटनीतिज्ञ व धैर्यवान के रूप में स्मरण किया जाता रहेगा। उन्होंने मारवाड़ में सुदृढ़ प्रशासनिक व्यवस्था स्थापित की जिसके कारण उनके वंशज निरंतर शासन करते रहे।

राव जोधा से ही जोधपुर की ऐतिहासिक शौर्य यात्रा प्रारम्भ होती है। राव जोधा ने युद्ध-कौशल व कूटनीतिक राजनीति अपने पिता राव रणमल से सीखी थी। राव रणमल अपने पिता राव चूंडा के देहान्त के बाद 1423 ई. में मेवाड़ महाराणा लाखा की सेवा में मेवाड़ चले गये। उन्होंने अपनी बहन हंसा बाई का विवाह लाखा के साथ कर देने के बाद मेवाड़ की राजनीति में राव रणमल का महत्त्व बढ़ गया। लाखा की मृत्यु के बाद उनका अल्पवयस्क पुत्र मोकल गद्दी पर बैठा तथा मेवाड़ राज्य का सारा प्रबन्ध राव रणमल देखने लगे। महाराणा मोकल की हत्या के बाद अल्पवयस्क कुंभा मेवाड़ की गद्दी पर आसीन हुए। राव रणमल के बढ़ते सैन्य व राजनीतिक प्रभाव से मेवाड़ में दरबारी षड्यंत्र में 1428 में राव रणमल की हत्या कर दी गई। राव रणमल के पुत्र राव जोधा इन विषम परिस्थितियों में अपने विश्वस्त सात सौ साथियों के साथ मेवाड़ से मारवाड़ के लिये रवाना हो गये। रावत चूंडा के नेतृत्व में मेवाड़ की सेना ने राव जोधा का पीछा किया। कपासन के पास पहली मुठभेड़ में भीषण संघर्ष में राव जोधा के दो सौ सहयोगी मारे गये। इसके बाद सोमेश्वर के घाटे तक पहुँचते-पहुँचते चितरोड़ी, सतखम्भा, कनवज व केलवा में भी दोनों में संघर्ष हुआ। सोमेश्वर पहुँचने तक राव जोधा के ढ़ाई सौ योद्धा ही बचे। स्वामीभक्त राठौड़ योद्धाओं ने राव जोधा को सकुशल सुरक्षित मण्डोर पहुँचाने के लिये सात योद्धाओं के साथ रवना किया। राव जोधा तो सकुशल पहुँच गये लेकिन मण्डोर भी सुरक्षित नहीं होने से जांगल की तरफ निकल गये जहाँ काहुनी गाँव को अपना ठिकाना बनाया।

चित्तौड़ की सेना ने सोमेश्वर के बाद मण्डोर पर अधिकार करके चौकड़ी, मेड़ता, सोजत में भी अपनी सैन्य चौकियाँ स्थापित कर दीं। काहुनी में राव जोधा को ढूंढ़ने पर वह जंगल में चले गये। काफी संघर्ष के दौर से गुजरते हुए राव जोधा इधर-उधर अपने ठिकाने बदलते रहे। पिता राव रणमल की हत्या के समय मारवाड़ की शासन व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। जैतारण पर सिंधल राठौड़ों का अधिकार, सिवाना पर जैतमालोत शासन, खेड़ पर राव मल्लीनाथ के वंशजों व नागौर पर खानजादा वंश का अधिकार था। इस पर राव जोधा ने धीरे-धीरे अपनी सैन्य ताकत बढ़ायी। गागरोन के शासक चाचिगदेव चौहान की पुत्री से बरजांग के विवाह से उनको मदद भी मिली। सेतरावा रावत लूणा ने भी सहयोग किया। राव जोधा का आत्मविश्वास बढ़ता गया और सही मौका देखकर मण्डोर पर आक्रमण कर पुनः अधिकार कर लिया। साथ ही अन्य मेवाड़ी कब्जे की चौकियाँ चौकड़ी, कोसाना पर

कब्जा किया व मेवाड़ी सेना को भगाकर सोजत के पास धनला में परास्त किया। लगातार 15 वर्षों के संघर्ष के बाद राव जोधा ने मारवाड़ को मेवाड़ से मुक्त कराकर 1453 में मण्डोर पर पुन: आधिपत्य स्थापित किया।

1458 में मण्डोर के किले में राव जोधा का शास्त्रानुसार राज्याभिषेक हुआ। राव जोधा ने अपने पुत्र दूदा को भेजकर जैतारण पर कब्जा करवाया, छापर द्रोणमुख पर आधिपत्य भी महत्त्वपूर्ण था। राव जोधा के अनुज कांधल लोदी वंश के प्रमुख सामन्त सारंग खाँ से युद्ध में मारे गये। राव जोधा ने उसे मारकर बदला लिया। इसके बाद मारवाड़ की सीमाएँ हिसार तक जा पहुँची। उत्तरी भारत के प्रमुख राजाओं में राव जोधा की गिनती होने लगी। राव जोधा के पुत्र बीका द्वारा बीकानेर की स्थापना व राव दूदा व वरसिंग द्वारा मेड़ता की स्थापना प्रमुख घटनाएँ रहीं। मण्डोर के बाद राव जोधा ने मेड़ता, फलोदी, पोकरण, सिवाना, पाली, सोजत, नाडोल, जैतारण, शिव, डीडवाना, गोडवाड़ का कुछ हिस्सा व नागौर पर अधिकार कर लिया। उत्तरी भारत की ओर विजय अभियान को पठानों ने रोक दिया।

राव जोधा ने राजनीतिक दृष्टि व कूटनीति के तहत मेवाड़ से रिश्ते सुधारने की नीति के तहत राणा कुम्भा से राजनीतिक सहयोग स्थापित करने के लिये अपनी पुत्री श्रृंगारदे का विवाह राणा कुम्भा के पुत्र रणमल के साथ किया। मारवाड़-मेवाड़ सम्बन्ध पुन: बेहतर बने। इसके बाद सोजत को सीमा निर्धारण का बिन्दु बनाया। राणा कुम्भा के उत्तराधिकारी उदा ने उन्हें अजमेर एवं सांभर पुन: सौंप दिए ताकि पठानों के विरुद्ध संघर्ष में राव जोधा का सहयोग मिल सके।

राव जोधा के 14 पुत्र सातल, सूजा, नींबा, दूदा, वरसिंग, बीका, बीदा, जोगा, दूदा, शिवराज, करमसी, रायमल, बनवीर, जोगा व सावंतसी थे। उन्होंने मारवाड़ का विशाल साम्राज्य सुरक्षा व व्यवस्था के लिये अपने स्वजनों को सौंपा। उन्होंने सोजत अपने बड़े भाई को, मेड़ता पुत्र वीरसिंह, छापर-द्रोणमुख अपने पुत्र बीदा को, बीकाजी ने जांगल प्रदेश को जीतकर 1488 में बीकानेर में किले की स्थापना कर बीकानेर शहर बसाया। मध्ययुगीन राजस्थान में राव जोधा का उत्कर्ष उनकी उपलब्धियों का प्रमाण है। 50 वर्ष के कालखण्ड तक शासन करने के बाद 73 वर्ष की आयु में वि.सं. 1545 की वैशाख सुदी पांचम, 16 अप्रेल, 1488 ई. को स्वर्गवास हुआ।

राव जोधा द्वारा स्थापित मेहरानगढ़ दुर्ग आज भी अपने अन्दर वर्षों के इतिहास को समाए हुए महाराजा गजसिंह जी के मुख्य संरक्षण में मेहरानगढ़ म्यूजियम ट्रस्ट के माध्यम से इतिहास, कला, संस्कृति व हेरिटेज को बढ़ावा देने का उल्लेखनीय कार्य निरंतर कर रहा है।

इस क्षणभंगुर संसार में जो कुछ है वह स्थाई नहीं है और इसीलिए विचार जगत में भी जो कुछ आता है वह भी स्थिर और निश्चित नहीं होता। एक अज्ञात आकर्षण तो अनुभव होता है पर न उस आकर्षण का कोई आकार बनता है न आकर्षण तत्त्व का ही। कहा नहीं जा सकता कि किसी व्यक्ति का किसी विचार अथवा तत्त्व में जो आकर्षण है, उसमें जीवनव्यापी प्रभाव पैदा करने की क्षमता है या नहीं। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक जीवन के बीच जो दूरी है, वह क्या कभी पूरी होगी? या तो इन प्रश्नों का उत्तर समय ही दिया करता है और या हमारी निष्ठा और श्रद्धा-शक्ति ही उत्तर दिया करती है।

- पू. तनसिंहजी

गतांक से आगे

पूज्य श्री तनसिंहजी (के सम्बन्ध में)

''जो कुछ देखा, समझा व अनुभव किया''

– चैनसिंह बैठवास

एक माँ वह है जो इस पार्थिव शरीर को जन्म देती है, स्वयं गीले में सोकर अपने बच्चों को सूखे में सुलाती है, स्वयं भूखी रहकर अपने बच्चे का पेट भरती है, उनका पालन-पोषण करती है। दूसरी माँ से अभिप्राय जग-जननि माँ से है जिनके विविध रूप हैं। कोई उनके सहस्र नाम जपता है, कोई उनके अष्टोत्तरशत नाम जपता है। कोई उसे भक्त बनकर पुकारता है या पुत्र रूप में पुकारता है तो वह उनकी बात सुनती भी है और उनका मार्गदर्शन भी करती है, इतना ही नहीं उनका योगक्षेम भी वहन करती है। इस जग-जननि माँ के बारे में पूज्य श्री तनसिंहजी ने कहा-''तेरा 'माँ' से बढकर कोई नाम नहीं है। ''माँ'' से अर्थ केवल तुम जग जननि से है। तेरा नाम, रूप, गुण सब इसी शब्द और उसके अर्थ में समाए हुए हैं। विधि रूप हैं तुम्हारे। तुम दिखाई नहीं देती, पर तुम कितने रूपों में इस संसार में विचरण करती हो, इसका कोई हिसाब ही नहीं, पर ठहरो-मैं तुम्हारे गुणगान करने लगूंगा, तो मुझे कोटिबार जन्म लेना पड़ेगा, फिर भी नहीं लिख सकूंगा, इसलिए मैं तो केवल इसी बात पर आता हूँ, कि तुमने मेरे साथ क्या किया और मैं तेरा कैसा पुत्र हूँ।

माँ! ज्ञानी मर जाये, फिर भी तुझे समझ कर वह आनन्द नहीं उठा सकते, जो एक पुत्र बनकर व्याकुल होकर तुम्हें पुकार करने पर तेरी महिमा देखकर आनन्द पाता है। बहुत पुराने समय की बात है, जब मैं आस्तिक व नास्तिक की बात भी नहीं जानता था। यह भी नहीं जानता था कि तुम कहीं हो जो मेरी रक्षा कर रही हो। आज जब मैं गम्भीरता से सोचता हूँ, तो पाता हूँ, तब भी तुमने मेरे लिये क्या नहीं किया। कौनसी शिक्षा नहीं दी। तुम्हारी और मेरी बातें तो तेरी और मेरी बातें हैं-किसी को क्यों बताऊँ, पर सोचता हूँ यह संसार ही तेरी संतान है, फिर उन्हें बताऊं तो क्या हर्ज है।''

संसार की हर स्त्री माँ स्वरूप है जिनका सम्मान, आदर व सत्कार करने का भाव हर व्यक्ति के हृदय में विद्यमान हो क्योंकि वह जग-जननि का ही एक रूप है। वह हर एक के लिये सम्मानीय, आदरणीय व पूज्यनीय है। उन पर बुरी नजर डालने का अभिप्राय है माँ को अनीति से देखना है। पूज्य श्री तनसिंहजी संसार की समस्त स्त्रियों को माँ जग जननि स्वरूपा मान उनका सत्कार करते थे। इस सम्बन्ध में पूज्यश्री ने बताया-

''मैंने अपने जीवन में पर स्त्री का स्पर्श नहीं किया, इसलिए नहीं कि तुम संसार में स्त्री रूप में हो। यह ज्ञान और बोध तो मुझे बहुत बाद में हुआ। उस समय तो मेरी अवस्था 12-13 वर्ष के लगभग होगी। मैंने एक पर स्त्री का स्पर्श किया। उस समय मेरे पतन के मार्ग में कोई बाधा भी नहीं थी किन्तु उस समय मैंने दो जलती हुई ऐसी भयंकर आँखें देखी कि मेरे रोंगटे खड़े हो गये। इतना ही नहीं, एक बहुत जोरों की चीख की सी आवाज आई, पर आश्चर्य है, कोई जागा नहीं। केवल मैं ही था, जो पागल की भाँति चिल्लाकर खड़ा हो गया। इतना भयभीत हो गया कि मैं थर-थर कांपने लगा। आज भी उस आवाज और आँखों को याद करता हूँ, तो रोंगेटे खड़े हो जाते हैं, सोचता हूँ दुर्गुणों के प्रति इतना भयंकर क्रोध क्या मानवीय था? बाहर कुछ नहीं था। मेरी चिल्लाहट सुनकर सब जाग गये। उस रात तो मैं नींद क्या लेता किन्तु लगभग एक महिने तक मेरी पागलों की सी स्थिति बनी रही। लोगों ने समझा मुझे भूत लग गया है। ताबीज और ओझा आये। किसी ने कुछ कहा, किसी ने कुछ, किन्तु मैं जानता हूँ कि वे कितने ढोंगी थे। एक महिने तक मैं अकेला नहीं रह सकता था। आखिर ठीक हो गया। यह तुम्हारी पहली शिक्षा थी। किसी स्त्री का स्पर्श करना माता को अनीति से देखना

है। वर्षों बाद बड़ा होने पर जब मैंने दुर्गा सप्तशती पढी, तब मालूम हुआ कि संसार की समस्त स्त्रियों में तुम्ही हो। आज भी मैं किसी स्त्री से बात नहीं कर सकता। जिसने पर स्त्री का गमन किया है उसे भी क्षमा करना मेरे लिये दूभर है।

''हाँ एक बात और है। कुछ लोग मुझ पर आरोप लगाते हैं, कि मैं यदा कदा किसी की निन्दा करता हूँ। माँ! जिसने तेरे प्रति अपराध किया हो, उसे मैं कैसे क्षमा कर सकता हूँ। तू संसार में नारी के रूप में है। जिसने तेरे स्वरूप के साथ विश्वासघात किया है, उसकी छाया से मैं नफरत करता हूँ। लोग कहते हैं तू सबको क्षमा करने वाली है, फिर मैं तुम्हारे नाम पर उसे छोड़ नहीं सकता? हाँ माँ! मैं उसे छोड़ सकता हूँ, यदि वह सर्वात्मना स्वीकार करे, कि उसने ऐसा किया है और भविष्य में ऐसा नहीं करेगा। जिन्होंने ऐसा किया है उन्हें मैं लेकर तेरे पास आया ही हूँ और मैंने तुमसे यही प्रार्थना की है-दण्ड तो दो, किन्तु इसके दोष को मैंने अपने ऊपर ले लिया है, अब दण्ड मुझे दो, इसे छोड़ दो, यह तुम्हारे स्वरूप को पहचान गया है और तेरी शरण में है। परन्तु माँ, जो गाल बजाता है, अपने आपको सही सिद्ध करने की चेष्टा करता है, वह अपने झूठ को छिपाने के लिये और झूठ बोल रहा है, वह तेरी रक्षा करने की शक्ति में विश्वास नहीं करता, वह शरण का अधिकारी नहीं है। फिर भी तुम उसे शरण दो, यह तुम्हारी इच्छा है, किन्तु जब तक प्रत्यक्ष रूप में तुम मना नहीं करोगी, तब तक मैं उनके और उनकी ऐसी पीढी के खिलाफ संघर्ष करता ही रहूंगा।''

माँ के सान्निध्य में परमानन्द के रसास्वादन से अभिभूत पूज्य श्री तनसिंहजी को भौतिक सुखों की निस्सारता व नश्वरता का ज्ञान हुआ और माँ में उनका अटूट विश्वास जम गया। माँ के अनन्य भक्त पूज्यश्री समाज बन्धुओं को साथ लेकर माँ के बताये गए मार्ग पर आगे बढ चले और अपने अनुभवों को साझा करते हुए माँ को सम्बोधित करते पूज्यश्री ने कहा-

''तेरी गोद में जो आनन्द है, उसका शतांश भी यदि किसी ने पा लिया है, उसका संसार के क्षणिक सुखों की ओर ललचाना हास्यास्पद है। जो विकास का सही मार्ग प्राप्त कर लेता है, वह साथियों के लिये धीमे-धीमे कदम उठाये, यह उसके लिये दूभर है। तुम्हारे सहवास के उन दिनों को तरसता हूँ, पर क्या करूँ, तुम्हीं ने तो यहाँ लगा रखा है, तब तक एक ईमानदार सेवक की भाँति मुझे वह सब कुछ करना ही है, जो कराना चाहती है। इसलिए विवाद विरोधों को पीकर अब तुम्हारे बताए गए मार्ग पर बढ रहा हूँ-बढता जाऊँगा। मैं देख रहा हूँ, पुराना जीवन निष्क्रिय होकर सो रहा है और रात भर की नींद के बाद वही पुन: नव प्रभात के साथ उठ रहा है। वर्षो बाद मेरी इस प्रणाली का रहस्य समझ में आयेगा। पहले यह मैं सोचता था, किसी को आगे बढाने के लिये स्वयं अपनी गति धीमी कर दो। वह आगे दीखेगा। फल लगने से पहले कलियों को झड़ जाना चाहिये। उसके लिये प्रयत्न भी किया था, पर वह वैज्ञानिक प्रयत्न नहीं था। इस प्रकार जो आगे होगा, वह आगे दिखाई मात्र ही देगा। उसे आगे चलने की शक्ति का साक्षात्कार नहीं होगा, केवल उसका अहंकार ही होगा। इस पद्धति के बड़े कुपरिणाम भी हुए। आगे दिखाई देने वाला-केवल अश्वमेध यज्ञ का घोड़ा हो गया। कोतल घोड़ा। लेकिन अब मैंने दूसरा मार्ग अपनाया है। अपनी गति यदि तीव्र है, तो तीव्र रखो, तीव्र से तीव्रतर करते जाओ, यही विकास का मार्ग है, पर सामूहिक निर्माण की दृष्टि से केवल इतना ही करना है, कि साथ चलने वालों का हाथ पकड़कर तीव्र गति से चलने में सहारा दो। आगे चलने वाले और पीछे चलने वाले के बीच इतनी दूरी न होनी चाहिए कि आगे वाला आँखों से ओझल हो जाये। मेरा अनुमान है, नवीन मार्ग-बलपूर्वक आगे बढने का मार्ग, सही मार्ग है और मार्ग की समस्याओं का इसी में समाधान है। यह तुम तक पहुँचने का मार्ग है। तेरी गोद में पहुँच कर विश्वास लेने का विचार है। इस मार्ग से आगे बढने की तीव्र गति की क्षमता जिनमें नहीं है,

उनकी दुर्गति हो सकती है। वे बुरी तरह घसीटे जाने पर निर्वाण को प्राप्त हो जायें। ऐसे लोग जो आगे बढने की इच्छा नहीं रखते, उनमें किसी प्रकार की जिज्ञासा अथवा अभीप्सा नहीं है, उन्हें वहीं रहने देना है, जहाँ वे पड़े हैं। लेकिन ऐसे भी हैं, जो उनके ऊपर से या पास से अथवा आगे से आगे बढने के इच्छुक हैं, जो सचेष्ट हैं, गति बढाने को उनको इससे अवश्य सहारा मिलेगा और उनकी शक्तियाँ बढेगी और माँ जब तक कोई तेरे समीप नहीं आता, मुझे सर्वात्मना नहीं पुकारता, जो रोकर तुझे परेशान नहीं करता, क्या उस बच्चे के लिये कोई चिन्ता करती हो? नहीं करती, क्योंकि तुम जानती हो, वह स्वावलम्बी है, अपने आप कर लेगा। तुम ऐसी लीला क्यों करती हो, जिससे उनमें व्यर्थ का अहंकार बढे। उन्हें भी तुम अपने मातृत्व का जलवा तो बताओ। अब समझ गया। तुम मुझे भी यही शिक्षा दे रही हो और इसी से प्रसन्न होकर मुझे अपनी अचल शरण में लेना चाहती हो। तिहरे बौद्धिक धर्म की भाँति अब मैंने भी तिहरा नारा शुरू किया है। उस नारे में 'बुद्ध' के स्थान पर 'तेरा' नाम है।''

पूज्य श्री तनसिंहजी ने माँ से आराधना की कि माँ मुझे ज्योति प्रदान करो, मेरा मार्गदर्शन करो और माँ ने उनकी सुनी, उन्हें ज्योति प्रदान की, उनका मार्गदर्शन किया। पूज्य श्री ने माँ के बताये रास्ते का अनुकरण करना शुरू किया और हम लोग (क्षत्रिय बन्धु) भी उनका अनुकरण करें, इसके लिये पूज्य श्री ने श्री क्षत्रिय युवक संघ को साधना मार्ग बनाया। श्री क्षत्रिय युवक संघ एक साधना मार्ग है, ईश्वर प्राप्ति का मार्ग है, गंतव्य तक पहुँचने का मार्ग है। हम जानते हैं कि साधना मार्ग कंटकाकीर्ण है, इस पर चलना तलवार की धार पर चलना है। हम लोगों (क्षत्रिय बन्धुओं) के लिये इस राह को सहज और सरल बनाने के लिये पूज्य श्री ने एक साधना पथ पुस्तिका की रचना कर अपने अनुयायियों को दिशा निर्देश दिया ताकि वे साधना पथ पर चलकर अपनी श्रेष्ठता सिद्ध कर सकें। पूज्य श्री ने अपने अनुयायियों को जाचना शुरू किया ताकि समय आने पर संचित निधि को संभाल सकें इनमें से वो कौन है?

पूज्य श्री तनसिंहजी ने बताया-''कई दिनों तक उत्तराधिकार के मामले को लेकर मैं चिन्तित था। मेरी सम्पत्ति-मेरे इस जीवन की संचित निधि किसके हाथों में सौंपू? ढूँढ़ना शुरू किया, पर यह क्या, यह तो थोपना हुआ। ऐसा नहीं उत्तराधिकारी की क्षमता बहुतों में है, किन्तु यह अधिकार देने से पहले कुछ बातें आवश्यक रूपसे सिखानी होगी। उस शिक्षा का वैज्ञानिक आधार ढूंढ़ने की चेष्टा की और सूत्र मिल गया। सूत्र को लेकर पुस्तक तैयार हुई, लेकिन बड़ा हंगामा मचने लगा। कुछ आक्षेप तो इतने कटु थे, कि गले में उतरते नहीं थे। मुझे कहा गया, तुम पोप बनना चाहते हो। मैंने पोपग्रन्थ का पठन किया, तो सौ में से बीस तो ऊँघ रहे थे, बीस का ध्यान अपने कपड़ों की ओर था, बीस सुनने की अपेक्षा अपनी बात सुनाने को आतुर थे। किसी ने तो यहाँ तक कहा-यह तुमने नहीं किया है-कराया गया है। लेकिन कराने वाले कौन हैं? इस सम्बन्ध में उनकी मान्यता निराली ही है। बीस ऐसे थे जो सुन रहे थे किन्तु समझ नहीं रहे थे। शेष बीस में दस ऐसे थे जो समझ इसलिए रहे थे कि इसके अतिरिक्त अथवा इसके विपरीत समझने की शक्ति उनमें अभी तक विकसित नहीं हुई थी। शेष दस में से पाँच ऐसे थे जो समझ गये किन्तु समझा नहीं सकते थे और पाँच ऐसे थे जो कुछ-कुछ समझे भी किन्तु कुछ समझ कर भी ठीक प्रकार समझना नहीं चाहते क्योंकि वे इसकी आवश्यकता नहीं समझते और कुछ चाहते हुए भी समझा नहीं पाते, क्योंकि बिल्कुल ठीक तरीके से समझा भी नहीं सके। इस सबके बाद मैं क्या बनूंगा यह अज्ञानियों का वृथा अनुमान है। मैं जो कुछ बना हुआ हूँ, वह भी बरबस बना हुआ हूँ।''

(क्रमश:)

पृथ्वी के सारे समुद्र मिलकर आत्म रस रूपी उस निर्झर को नहीं पा सकते जो माता का हृदय चीर कर आँसुओं के रूप में निस्सृत होता है। - भगवती प्रसाद वाजपेयी

गतांक से आगे

साधना की प्रतिक्रियाएँ

– स्वामी यतीश्वरानन्द

चेतना के उच्च केन्द्र को पकड़े रहो :

ये सारी आध्यात्मिक कठिनाईयाँ तुम्हें तभी तक कष्ट देंगी, जब तक तुम अपनी आध्यात्मिक चेतना के केन्द्र को खोज न लोगे। ज्यों ही तुम उसे पा लोगे, त्यों ही लड़ाई में आधे से अधिक विजय हो जायेगी। तब तुम अपने मार्ग के सम्बन्ध में निश्चित हो जाते हो तथा बहुत-सी अनिश्चितता और तनाव दूर हो जाता है। इसके बाद संघर्ष सूक्ष्मतर हो जाते हैं, लेकिन वे कम भयानक होते हैं और उनका बाह्य प्रकाश कम होता है। उसके बाद तुम अधिक संतुलन के साथ अधिक शक्तिपूर्वक आन्तरिक संघर्ष कर पाते हो। प्रत्येक सच्चे संघर्ष का पुरस्कार होता है।

परिस्थितियाँ चाहे कुछ भी हों, सदा अपनी चेतना के केन्द्र को पकड़े रहो। जब कोई समस्या पैदा हो तो अपने चेतना के केन्द्र पर चले जाओ और जब तक समस्या दूर न हो जाय, तब तक वहाँ बने रहो। जब किसी भी प्रकार का प्रलोभन आए तो वहाँ चले जाओ। जब कोई अशुभ प्रेरणा रूपायित होने का प्रयत्न करे तो वहाँ चले जाओ। बाह्य-जगत् से तुम्हें आघात प्राप्त हो तो वहाँ चले जाओ। उसे सदा स्थिर रखो, उसे अपना निजी घर बना लो। चेतना के केन्द्र को उच्चतर स्तर पर बदले बिना मनोनिग्रह एक असम्भव कार्य है। और दीर्घकाल तक निरंतर तीव्रतापूर्वक जप, ध्यान और साधन किये बिना तुम चेतना के केन्द्र को सफलतापूर्वक परिवर्तित करके उच्च स्थान पर स्थिर तथा चिंतन प्रवाह को परिवर्तित कर उच्चतर मार्गों में प्रवाहित नहीं कर सकते।

कई बार पुरानी आदतों के कारण हमारी चेतना का केन्द्र कुछ समय तक उच्च स्तर पर रहने के बाद निम्नगामी हो जाता है। तब उस केन्द्र-विशेष से सम्बन्धित अनेक प्रकार के विचार उठने लगते हैं। अत: तुम्हें ऐसी परिस्थिति का सामना करने के लिये अपने को तैयार रखना चाहिए। सदा स्वयं को देह और मन से भिन्न एक स्वप्रकाश आत्मसत्ता समझो। अपने नियमित ध्यान के बाद उपनिषदों अथवा शंकराचार्य के अद्वैतपरक स्तोत्रों में से कुछ निर्दिष्ट अंशों का नियमित पाठ करो। आत्मा के वास्तविक स्वरूपविषयक इन अंशों का पाठ करते समय इन भावों को अपने मन में गहरे बिठाने का प्रयत्न करो।

साधना की सकारात्मक तथा नकारात्मक पद्धति का सम्मिलित प्रयोग करो। देह तथा उससे सम्बन्धित सभी वस्तुओं का निषेध करो, लेकिन अपने समग्र मन प्राण से, बलपूर्वक आत्मा को घोषित करो। अनेक प्रारम्भिक साधकों को इससे सिर दर्द हो जाता है। लेकिन और भी बहुत-सी बातें हैं जो सिरदर्द पैदा करती है। परिवर्तन के तौर पर यह क्यों नहीं?

पथिक की प्रगति :

हमारे जीवन की समग्र दिशा परिवर्तित करनी होगी। हमने जो कुछ किया है उसे मिटाना होगा। हमने अपने मित्रों को बाहर निकाल दिया है और शत्रुओं को भीतर आने तथा अपने साथ रहने दिया है। अत: अपने पूर्व के बुरे विचारों और कर्मों को प्रभावहीन बनाने के लिये विपरीत विचारों और विपरीत कार्यों की, साधना के समय ही नहीं अपितु अन्य समय भी आवश्यकता है। यह एक कठिन और दीर्घकालीन कार्य है, जिसके लिये महान् शौर्य एवं धैर्य की आवश्यकता है। आध्यात्मिक जीवन फूलों की सेज नहीं है, बल्कि सचमुच एक दुस्साहसिक और कठिन कार्य है।

हमारा मानव व्यक्तित्व शुभ और अशुभ, दोनों से निर्मित हुआ है। अशुभ को धीरे-धीरे दूर करना और शुभ को प्रोत्साहन देना चाहिए। आत्मा के विकास-क्रम में शुभ और अशुभ दोनों उपस्थित होते हैं। साधक को वास्तविकता का सामना कर जीवन की उच्चतर अभिव्यक्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए। हमें अपनी

त्रुटियों से भी लाभ उठाना चाहिए और उनकी अत्यधिक चिन्ता करने के बदले स्वयं को बलवान् बनाना चाहिए तथा यथाशक्ति उनकी पुनरावृत्ति से बचना चाहिए। यदि हम फिसल जाएँ तो इससे हमें विनम्र तथा परमात्मा पर और अधिक निर्भर होना चाहिए जो हमारा आश्रय तथा हमारी शक्ति का वास्तविक स्रोत है।

पूर्व अथवा पश्चिम में, सभी को, संघर्षों से गुजरना पड़ता है। पूर्व में आध्यात्मिक तथा नैतिक परम्परा अक्षुण्ण रखी गई है। इससे कुछ साधकों को सहायता मिलती अवश्य है, लेकिन बहुत से लोग ऐसे हैं जो उससे बिल्कुल लाभान्वित नहीं होते। अत: ऐसी शिकायत करने से कोई फायदा नहीं कि पश्चिम में आध्यात्मिक जीवन यापन करना बहुत कठिन है। जो कठिन है, वह है तुम्हारा स्वभाव और तुम्हें किसी न किसी प्रकार उसे बदलना ही होगा।

आत्मा के विकास के क्रम में जन्मजात अच्छाई संघर्षयुक्त सचेतन अच्छाई के स्तर से गुजरती है और बाद में निर्द्वन्द्व स्वाभाविक अच्छाई में पर्यवसित हो जाती है। अत: सचेतन संघर्ष हमारे विकास की एक सीढ़ी है तथा उसका अर्थ यह नहीं है कि उससे हमारी हानि होती है। लेकिन इस कारण सभी प्रकार के पतनों या स्खलनों को उचित नहीं ठहराया जा सकता।

नैतिक और आध्यात्मिक जीवन में आंशिक सफलता से हमें अधिकाधिक सफलता के लिये प्रेरणा मिलती है। लेकिन इतने मात्र से हमें यह नहीं समझ बैठना चाहिए कि हमने पूर्णता प्राप्त कर ली है। इसका अर्थ यह है कि निम्न प्रवृत्तियों और स्वभाव के नियंत्रण के द्वारा भले ही हमने स्वयं को शुद्ध करने में कुछ प्रगति की है, परन्तु बहुत-सी बुराईयाँ और अशुभ प्रवृत्तियाँ अभी भी बची हुई हैं तथा उनका नियंत्रण और अन्ततोगत्वा पूर्णरूपेण विसर्जन अभी बचा हुआ है।

अपनी नैतिक और आध्यात्मिक साधना के पूरे समय हमें अपनी प्रसुप्त क्षमताओं में, लक्ष्य के निकट से निकटतर बढ़ने की क्षमता में चिरस्थायी विश्वास होना चाहिए। लेकिन जब तक वह हमारे जीवन में पूरी तरह से रूपायित न हो जाए, जब तक वह हमारे विचारों और क्रियाओं में सम्पूर्ण परिवर्तन न ला दे, तब तक हमें प्रसुप्त क्षमता को वास्तविक कभी नहीं समझना चाहिए।

आध्यात्मिक अनुभूति के स्वप्न देखना पर्याप्त नहीं है। हम बहुत-सा धन पाने का स्वप्न देख सकते हैं, लेकिन सदा याद रखो कि स्वप्न में प्राप्त धन से वास्तविक जगत् में भोजन खरीद कर भूख मिटाना सम्भव नहीं है।

अगर हम हवा का वपन करेंगे तो घूर्णिवात काटना होगा। अगर हम व्यर्थ की बातों को मन में प्रवेश देंगे तो वे बढ़-चढ़कर प्रकट होगी। सभी दमन किए गए घूर्णिवात प्रकट होंगे। मन में छिपे सभी बुरे चित्र आगे या पीछे विकसित होंगे। हमें ''पशु का सामना'' करना ही होगा। वस्तुस्थिति को उसके वास्तविक रूप में देखना होगा और तब सभी में परमात्मा का दर्शन करना होगा। परमात्मा में माया का यह सारा खेल हो रहा है, जिससे वे हमारी दृष्टि से पूरी तरह ओझल हो गये हैं। हमें माया के आर-पार देखना ही होगा। हमारी साधना-कर्तव्य पालन भी जिसका अंग है- हमें एक प्रकार के मानसिक एक्स-रे के विकास में सहायता करती है, जिसके द्वारा हम वस्तुओं के प्रातिभासिक स्वरूप को तथा दृश्य-जगत् के रूप में प्रतीत होने वाले सत्य को देखने में समर्थ होते हैं।

यह एक कठिन, लम्बा संघर्ष है जो अन्तहीन प्रतीत होता है। हम जितनी प्रगति करते हैं, संघर्ष उतना ही सूक्ष्म और कठिन होता जाता है। और इस दौरान किये गये आत्म-विश्लेषण से बहुत-सी वीभत्स बातें प्रकट होती हैं-ऐसी बातें जिन्हें हम सामान्यत: बड़े शोभनीय नाम देते हैं। हमारे तथाकथित नि:स्वार्थ सम्बन्ध तथा मानवी भावनाएँ और मनोवृत्तियाँ न्यूनाधिक मात्रा में हमारे निम्न-स्वभाव पर ही आधारित होती हैं। यहाँ तक कि हमारा भगवत्प्रेम, देवमानव के प्रति भक्ति तथा सहयोगी भक्तों के प्रति स्नेह बहुत मात्रा में स्वार्थ-मूलक होते हैं।

(शेष पृष्ठ 33 पर)

संन्यास

– *ओशो*

अहिंसा, अपरिग्रह, अचौर्य, अकाम और अप्रमाद संन्यास की कला के आधारभूत सूत्र हैं। और संन्यास एक कला है। समस्त जीवन की एक कला है। और केवल वे ही लोग संन्यास को उपलब्ध हो पाते हैं जो जीवन की कला में पारंगत हैं। संन्यास जीवन के पार जाने वाली कला है। जो जीवन को उसकी पूर्णता में अनुभव कर पाते हैं, वे अनायास ही संन्यास में प्रवेश कर जाते हैं करना ही होगा। वह जीवन का ही अगला कदम है। परमात्मा संसार की सीढ़ी पर ही चढ़कर पहुँचा गया मंदिर है।

तो पहली बात आपको यह स्पष्ट कर दूँ कि संसार और संन्यास में कोई भी विरोध नहीं है। वे एक ही यात्रा के दो पड़ाव हैं। संसार में ही संन्यास विकसित होता है और खिलता है। संन्यास संसार की शत्रुता नहीं है, बल्कि संन्यास संसार का प्रगाढ़ अनुभव है। जितना ही जो संसार का अनुभव कर पाएगा, वह पाएगा कि उसके पैर संन्यास की ओर बढ़ने शुरू हो गए हैं। जो जीवन को ही नहीं समझ पाते, जो संसार के अनुभव में ही गहरे नहीं उतर पाते वे ही केवल संन्यास से दूर रह जाते हैं।

तो इसलिए पहली बात है मैं आपको स्पष्ट कर दूँ कि मेरी दृष्टि में संन्यास का फूल संसार के बीच में ही खिलता है। उसकी संसार से शत्रुता नहीं। संसार का अतिक्रमण है संन्यास। उसके भी पार चले जाना संन्यास है। सुख को खोजते-खोजते जब व्यक्ति पाता है कि सुख मिलता नहीं, वरन जितना सुख को खोजता है उतने ही दुख में गिर जाता है; शान्ति को चाहते-चाहते जब व्यक्ति पाता है कि शान्ति मिलती नहीं, वरन शान्ति की चाह और भी गहरी अशान्ति को जन्म दे जाती है; धन को खोजते-खोजते जब पाता है कि निर्धनता भीतर और भी घनीभूत हो जाती है; तब जीवन में संसार के पार आँख उठनी शुरू होती है। वह जो संसार के पार आँखों का उठना है, उसका नाम ही संन्यास है।

इसलिए ये पाँच सूत्र जिनकी हम यहाँ चर्चा कर रहे हैं, ठीक से समझें तो ये संन्यास के ही सूत्र हैं। और जिसकी आँखें संसार के बाहर उठनी शुरू नहीं हुई, उसके किसी भी काम के नहीं हैं।

मुझे बहुत से मित्रों ने आकर कहा है कि बात कुछ गहरी है और हमारे सिर के ऊपर से निकल जाती है। तो मैंने उनसे कहा कि अपने सिर को थोड़ा ऊँचा करो ताकि सिर के ऊपर से न निकल जाये। जिनकी आँखें संसार के जरा भी ऊपर उठती हैं, उनके सिर भी ऊँचे हो जाते हैं। और तब ये बातें सिर के ऊपर से नहीं निकलेंगी, हृदय के गहरे में प्रवेश कर जायेंगी ये बातें गहरी कम, ऊँची ज्यादा हैं। असल में ऊंचाई ही गहराई भी बन जाती है। और ऊँची कोई अपने आप में नहीं है। हम बहुत नीचे, संसार में गड़े हुए खड़े हैं, इसलिए ऊँची मालूम पड़ती है। ऊँचाई सापेक्ष है, रिलेटिव है।

और एक बात ध्यान रहे कि संसार से थोड़ा ऊपर न उठें, संसार से ऊपर थोड़ा देखें। रहें संसार में कोई हर्ज नहीं। तो जमीन पर खड़े होकर भी आकाश के तारे देखे जा सकते हैं। खड़े रहें संसार में, लेकिन आँखें थोड़ी ऊपर उठ जायें तो ये सारी बातें बड़ी सरल दिखाई पड़नी शुरू होती हैं। वर्ना संसार की बातें रोज कठिन होती चली जाती हैं। कठिन होंगी ही, क्योंकि जिनका अन्तिम फल सिवाय दुख के, और जिनकी अन्तिम परिणति सिवाय अज्ञान के, और जिनका अन्तिम निष्कर्ष सिवाय गहन अंधकार के कुछ भी न होता हो, वे बातें सरल नहीं हो सकतीं, जटिल ही होंगी। चीजें दिखाई कुछ पड़ती हैं, हैं कुछ, और भ्रम कुछ पैदा होता है, सत्य कुछ और है। लेकिन हम संसार में इस भांति खोए होते हैं कि अन्य कोई सत्य भी हो सकता है, इसकी हमें कल्पना भी नहीं उठती।

मैंने सुना है, एक फ्रेंच उपन्यासकार बालजक के पास कोई व्यक्ति मिलने गया था। तो वह बालजक से

उसके उपन्यास के पात्रों के संबंध में बात कर रहा था। फिर बात उपन्यास के पात्रों पर चलते-चलते धीरे-धीरे राजनीतिक नेताओं पर और देश की राजनीति पर चली गई। थोड़ी देर तक बालजक बात करता रहा और फिर उसने कहा, माफ कीजिए, लेट अस कम बैक टु द रियलिटी अगेन, अब हमें असली बातों पर फिर वापस लौट आना चाहिए। और बालजक ने अपने उपन्यास के पात्रों की बात फिर से शुरू कर दी। बालजक के लिये उसके उपन्यास के पात्र रियलिटी हैं, यथार्थ हैं। और जिन्दगी के मंच पर सच में जो पात्र खड़े हैं, वे अयथार्थ हैं। बालजक ने कहा, छोड़ें अयथार्थ बातों को, हमें अपनी यथार्थ बातों पर फिर से वापस लौट आना चाहिए। बालजक उपन्यासकार हैं। उसके लिये उपन्यास के पात्र सत्य मालूम होते हैं, जीवंत व्यक्तियों से भी ज्यादा।

हम जिस संसार में इतने डूबे खड़े हैं, वहाँ हमें संसार के अतिरिक्त और कुछ भी सत्य दिखाई नहीं पड़ता है। यद्यपि जिन्होंने भी आँखें ऊपर उठाकर देखा है, उन्हें आँखें ऊपर उठाते ही संसार एक अयथार्थ हो जाता है, एक अनरियलिटी हो जाता है। संन्यास का अर्थ है, संसार के ऊपर आँख उठाना। संसार सब कुछ नहीं है, उसके पार भी कुछ है। उसकी तरफ खोज में गई आँखों का नाम संन्यास है।

यह संन्यास....कुछ बातें आपसे कहूं तो स्पष्ट हो सके! ऐसे संन्यास करीब-करीब पृथ्वी से विदा होने के करीब है। क्योंकि अब तक संन्यासी संसार से टूट कर जीया है। और अब भविष्य में ऐसे संन्यास की कोई भी संभावना बाकी नहीं रह जायेगी, जो संसार से टूट कर जी सके। इसलिए रूस से संन्यासी विदा हो गया, चीन से संन्यासी विदा किया जा रहा है। आधी दुनिया संन्यासी से खाली हो गई है। शेष आधी दुनिया कितने दिन तक संन्यासी के साथ रहेगी, कहना मुश्किल है। इस पूरी पृथ्वी पर यह हमारी सदी शायद संन्यास की अन्तिम सदी होगी, यदि संन्यास को नए अर्थ, नए डाइमेंशन और नए आयाम न दिए जा सके।

यह संन्यास विदा क्यों हो रहा है? संसार से तोड़कर जिस चीज को हमने अब तक बचा रखा था, वह हाट हाउस प्लांट था, वह संसार के धक्कों को अब नहीं सह पा रहा है। और जिस समाज ने संन्यासी को संसार से तोड़कर जिंदा रखा था, वह समाज भी मिटने के करीब आ गया है। तो अब उस समाज के द्वारा निर्मित संन्यास की व्यवस्था और संस्था भी बच नहीं सकती। जब समाज ही पूरा रूपांतरित होता है, तो उसकी सारी विधाएँ, उसके सारे आयाम टूट जाते हैं। जिस समाज में राजा थे, महाराजा थे, वह समाज मिट गया, राजे-महाराजे मिट गए। राजे-महाराजे के साथ उस समाज के दरबार में पाला हुआ कवि मिट गया। जो समाज कल तक था, जिसने संन्यासी को पाला था, वह समाज विदा हो रहा है। वह समाज बचने वाला नहीं है, संन्यासी भी बच नहीं सकेगा, यदि संन्यासी भी नए रूप को स्वीकार न कर सके।

तो एक बात जो मेरी दृष्टि में बहुत महत्त्वपूर्ण मालूम पड़ती है, वह यह कि संन्यास को बचाना तो अत्यन्त जरूरी है। वह जीवन की गहरी से गहरी सुगंध है। वह जीवन का बड़े से बड़ा सत्य है। तो उसे संसार से जोड़ना जरूरी है। अब संन्यासी संसार के बाहर नहीं जी सकेगा। अब उसे संसार के बीच, बाजार में, दुकान में, दफ्तर में जीना होगा, तो ही वह बच सकता है। अब संन्यासी अनप्रोडक्टिव होकर, अनुत्पादक होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे जीवन की उत्पादकता में भागीदार होना पड़ेगा। अब संन्यासी दूसरे पर निर्भर होकर नहीं जी सकेगा। अब उसे स्वनिर्भर ही होना पड़ेगा।

फिर मुझे समझ में भी नहीं आता कि कोई जरूरत भी नहीं है कि आदमी संसार को छोड़कर भाग जाये, तभी संन्यास उसके जीवन में फल सके। अनिवार्य भी नहीं है। सच तो यह है कि जहाँ जीवन की सघनता है, वहीं संन्यास की कसौटी भी है। जहाँ जीवन घना संघर्ष है, वहीं संन्यास के साक्षी-भाव का आनन्द भी है। जहाँ जीवन अपनी सारी दुर्गंधों में है, वहीं संन्यास का जब

फूल खिले, तभी उसकी सुगंध की परीक्षा भी है। और संसार में बड़ी ही आसानी से संन्यास का फूल खिल सकता है। एक बार हमें ख्याल आ जाये कि संन्यास क्या है तो घर से, परिवार से, पत्नी से, बच्चे से, दुकान से, दफ्तर से भागने की कोई भी जरूरत नहीं रह जाती। और जो संन्यास भागकर ही बच सकता है, वह बहुत कमजोर संन्यास है। वैसा संन्यास अब आगे नहीं बच सकेगा। अब हिम्मतवर, करेजियस, साहसी संन्यासी की जरूरत है। जो जिन्दगी के बीच खड़ा होकर संन्यासी है।

जहाँ है व्यक्ति, वहीं रूपांतरित हो सकता है। रूपांतरण परिस्थिति का नहीं है, रूपांतरण मन:स्थिति का है। रूपांतरण बाहर का नहीं है, रूपांतरण भीतर का है। रूपांतरण संबंधों का नहीं है, रूपांतरण उस व्यक्तित्व का है जो संबंधित होता है।

आरतेगावायगासिट ने एक छोटी-सी घटना लिखी है। लिखा है कि एक घर में एक व्यक्ति मरणासन्न पड़ा है, मर रहा है, उसकी पत्नी छाती पीटकर रो रही है। पास में डाक्टर खड़ा है। आदमी प्रतिष्ठित है, सम्मानित है। अखबार का रिपोर्टर आकर खड़ा है-मरने की खबर अखबार में देने के लिये। रिपोर्टर के साथ अखबार का एक चित्रकार भी आ गया है। वह आदमी को मरने हुए देखना चाहता है। उसे मृत्यु की एक पेंटिंग बनानी है, चित्र बनाना है। पत्नी छाती पीटकर रो रही है। डाक्टर खड़ा हुआ उदास मालूम पड़ रहा है, हारा हुआ, पराजित। प्रोफेसनल हार हो गई है उसकी। जिसे बचाना था उसे नहीं बचा पा रहा है। पत्रकार अपनी डायरी पर कलम लिए खड़ा है कि जैसे ही वह मरे, टाइम लिख ले और दफ्तर भागे। चित्रकार खड़ा होकर गौर से देख रहा है।

एक ही घटना घट रही है उस कमरे में, एक आदमी का मरना हो रहा है। लेकिन पत्नी को, डाक्टर को, पत्रकार को, चित्रकार को एक घटना नहीं घट रही है, चार घटनाएँ घट रही हैं। पत्नी के लिये सिर्फ कोई मर रहा है ऐसा नहीं है, पत्नी खुद भी मर रही है। यह पत्नी के लिये कोई दृश्य नहीं है जो बाहर घटित हो रहा है। वह उसके प्राणों के प्राणों में घटित हो रहा है। यह कोई और नहीं मर रहा है, वह स्वयं मर रही है। अब वह दोबारा वही नहीं हो सकेगी जो इस पति के साथ थी। उसका कुछ मर ही जाएगा सदा के लिये, जिसमें शायद फिर कभी अंकुर नहीं फूट सकेंगे। यह पति नहीं मर रहा है, उसके हृदय का एक कोना ही मर रहा है। पत्नी इनवाल्व है, वह पूरी की पूरी इस दृश्य के भीतर है। इस पति और इस पत्नी के बीच फासला बहुत ही कम है।

डाक्टर के लिये भीतर कोई भी नहीं मर रहा है, बाहर कोई मर रहा है। लेकिन डाक्टर भी उदास है, दुखी है। क्योंकि जिसे बचाना था, उसे वह बचा नहीं सका है। पत्नी के लिये हृदय में कुछ मर रहा है, डाक्टर के लिये बुद्धि में कुछ मरने की क्रिया हो रही है। वह यह सोच रहा है कि और दवाएँ दे सकता था तो क्या वह बच सकता था? क्या इंजेक्शन जो दिये थे, वे ठीक थे? क्या मेरी डाइगनोसिस में कहीं कोई भूल हो गई है? निदान कहीं चूक गया है? अब दोबारा कोई मरीज इस बीमारी से मरता होगा तो मुझे क्या करना है? डाक्टर के हृदय से इस मरीज के मरने का कोई भी संबंध नहीं है, पर उसके मस्तिष्क में जरूर बहुत कुछ चल रहा है।

पत्रकार का मस्तिष्क तो इतना भी नहीं चल रहा है। वह बार-बार घड़ी देख रहा है कि यह आदमी मर जाये तो टाइम नोट कर ले और दफ्तर में जाकर खबर कर दे। उसके मस्तिष्क में भी कुछ नहीं चल रहा है। वह एक काम कर रहा है। बाहर खड़ा है दूर, लेकिन थोड़ा-सा संबंध है उसका। वह सिर्फ इतना-सा संबंध है उसका कि इस आदमी के मरने की खबर दे देनी है जाकर। और वह खबर देकर किसी होटल में बैठकर चाय पीयेगा या खबर देकर किसी थियेटर में जाकर फिल्म देखेगा। बात समाप्त हो जायेगी। इस आदमी को उससे इतना संबंध है कि यह कब मरता है? किस वक्त मरता है? वह मरने की प्रतीक्षा कर रहा है।

चित्रकार के लिये आदमी मर रहा है, नहीं मर

रहा है, इससे कोई संबंध ही नहीं है। वह उस आदमी के चेहरे पर आ गई कालिमा का अध्ययन कर रहा है। उस आदमी के चेहरे पर मृत्यु के क्षण में जीवन की जो अन्तिम ज्योति झलकेगी, उसे देख रहा है। वह कमरे में घिरते हुए अंधेरे को देख रहा है। चारों तरफ से मौत के साये ने उस कमरे को पकड़ लिया है, वह उसे देख रहा है। उसके लिये आदमी के मरने की वह घटना रंगों का एक खेल है। वह रंगों को पकड़ रहा है, क्योंकि उसे मृत्यु का एक चित्र बनाना है। वह आदमी बिल्कुल आउटसाइडर है। उसे कोई भी लेना-देना नहीं है। यह आदमी मरे, कि दूसरा आदमी मरे, कि तीसरा आदमी मरे, इसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। वह पत्नी मरे, वह डाक्टर मरे, वह पत्रकार मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। ए बी सी डी कोई भी मरे, उसे कोई फर्क नहीं पड़ता है। उसे मृत्यु का रंगों में क्या रूप है, वह उसे पकड़ने में लगा है। मृत्यु से उसका कोई भी संबंध नहीं है।

परिस्थित एक है, लेकिन मन:स्थिति चार हैं। चार हजार भी हो सकती हैं। जीवन यही है संसारी का भी, संन्यासी का भी, मन:स्थिति भिन्न है। वही सब घटेगा जो घट रहा है। वही दुकान चलेगी, वही पत्नी होगी, वही बेटे होंगे, वही पति होगा, लेकिन संन्यासी की मन:स्थिति और है। वह जिन्दगी को किन्हीं और दृष्टिकोणों से देखने की कोशिश कर रहा है। संसारी की मन:स्थिति और है।

संसार और संन्यास मन:स्थितियाँ हैं, मेंटल एटीट्यूड्स हैं। इसलिए परिस्थितियों से भागने की कोई भी जरूरत नहीं है। परिस्थितियों को बदलने की कोई भी जरूरत नहीं है और बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मन:स्थिति बदलती है तो परिस्थिति वही नहीं रह जाती। क्योंकि परिस्थिति वैसी ही दिखाई पड़ने लगती है जैसी मन:स्थिति होती है। जो आदमी संसार छोड़कर, भागकर संन्यासी हो रहा है, वह भी अभी संसारी है। क्योंकि उसका अभी विश्वास परिस्थिति पर है। वह भी सोचता है, परिस्थिति बदल लूंगा तो सब बदल जाएगा। वह अभी संसारी है। संन्यासी वह है, जो कहता है कि मन:स्थिति बदलेगी तो सब बदल जाएगा। मन:स्थिति बदलेगी, सब बदल जाएगा, ऐसा जिसका भरोसा है, ऐसी जिसकी समझ है, वह आदमी संन्यासी है। और जो सोचता है कि परिस्थिति बदल जाएगी तो सब बदल जाएगा, ऐसी मन:स्थिति संसारी की है। वह आदमी संसारी है।

मेरा जोर परिस्थिति पर बिल्कुल नहीं है, मन:स्थिति पर है। एक ऐसा संन्यासी बच सकता है। और मैं कहना चाहता हूँ कि संन्यास बचाने जैसी चीज है।

पश्चिम ने विज्ञान दिया है, वह पश्चिम का कंट्रीब्यूशन है। मनुष्य के लिये। पूरब ने संन्यास दिया है, वह पूरब का कंट्रीब्यूशन है संसार के लिये। जगत को पूरब ने जो श्रेष्ठतम दिया है, वह संन्यासी है। जो श्रेष्ठतम व्यक्ति दिए हैं, वह बुद्ध हैं, वह महावीर हैं, वह कृष्ण हैं, वह क्राइस्ट हैं, वह मुहम्मद हैं। ये सब पूरब के लोग हैं। क्राइस्ट भी पश्चिम के आदमी नहीं हैं। ये सब एशिया से आये हुए लोग हैं।

शायद आपको पता न हो यह एशिया शब्द कहाँ से आ गया है। बहुत पुराना शब्द है। कोई आज से छह हजार साल पुराना शब्द है, और बेबीलोन में पहली दफा इस शब्द का जन्म हुआ। बेबीलोनियन भाषा में एक शब्द है 'असू'। 'असू' से एशिया बना। 'असू' का मतलब होता है, सूर्य का उगता हुआ देश। जो जापान का अर्थ है वही एशिया का भी अर्थ है। जहाँ से सूरज उगता है, जिस जगह से सूर्य उगा है, वहीं से जगत को सारे संन्यासी मिले।

यूरोप शब्द का ठीक इससे उल्टा मतलब है। यूरोप शब्द भी अशीरियन भाषा का शब्द है। वह जिस शब्द से बना है-अरेश-उस शब्द का मतलब है, सूरज के डूबने का देश, संध्या का, अंधेरे का, जहाँ सूर्यास्त होता है।

वे जो सूर्यास्त के देश हैं, उनसे विज्ञान मिला है, वैज्ञानिक मिला है। जो सूर्योदय के देश हैं, सुबह के उनसे संन्यास मिला है। इस जगत को अब तक जो दो बड़ी से बड़ी देन मिली है, दोनों छोरों से, वह एक विज्ञान की है। स्वभावत: विज्ञान वहीं मिल सकता है जहाँ

भौतिक की खोज हो। स्वभावत: संन्यास वहीं मिल सकता है जहाँ अभौतिक की खोज हो। विज्ञान वहीं मिल सकता है जहाँ पदार्थ की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। और संन्यास वहीं मिल सकता है जहाँ परमात्मा की गहराइयों में उतरने की चेष्टा हो। जो अंधेरे से लड़ेंगे वे विज्ञान को जन्म दे देंगे। और जो सुबह के प्रकाश को प्रेम करेंगे वे परमात्मा की खोज पर निकल जाते हैं।

यह जो पूरब से संन्यास मिला है, यह संन्यास भविष्य में खो सकता है। क्योंकि संन्यास की अब तक की जो व्यवस्था थी उस व्यवस्था के मूल आधार टूट गए हैं। इसलिए मैं देखता हूँ इस संन्यास को बचाया जाना जरूरी है। यह बचाया जायेगा, पर आश्रमों में नहीं, वनों में नहीं, हिमालय पर नहीं।

वह तिब्बत का संन्यासी नष्ट हो गया। शायद गहरे से गहरा संन्यासी तिब्बत के पास था। लेकिन वह विदा हो रहा है, वह विदा हो जाएगा, वह बच नहीं सकता है। अब संन्यासी बचेगा फैक्ट्री में, दुकान में, बाजार में, स्कूल में, यूनिवर्सिटी में। जिन्दगी जहाँ है, अब संन्यासी को वहीं खड़ा हो जाना पड़ेगा। और संन्यासी जगह बदल ले, इसमें बहुत अड़चन नहीं है। संन्यास नहीं मिटना चाहिए।

इसलिए मैं जिन्दगी को भीतर से संन्यासी कर देने के पक्ष में हूँ। जो जहाँ है वहीं संन्यासी हो जाये, सिर्फ रुख बदले, मन:स्थिति बदले। हिंसा की जगह अहिंसा उसकी मन:स्थिति बने, परिग्रह की जगह अपरिग्रह उसकी समझ बने, चोरी की जगह अचौर्य उसका आनंद हो, काम की जगह अकाम पर उसकी दृष्टि बढ़ती चली जाये, प्रमाद की जगह अप्रमाद उसकी साधना बने, तो व्यक्ति जहाँ है, जिस जगह है, वहीं मन:स्थिति बदल जाएगी। और फिर सब बदल जाता है।

इसलिए मैं जिन्हें संन्यासी कह रहा हूँ वे जगत से भागे हुए लोग नहीं हैं। वे जहाँ हैं वहीं रहेंगे। और यह बड़े मजे की बात है, आज तो जगत से भागना ज्यादा आसान है। आज जगत में खड़े होकर संन्यास लेना बहुत कठिन है। भाग जाने में तो अड़चन नहीं है, लेकिन एक आदमी जूते की दुकान करता है और वहीं संन्यासी हो गया है तो बड़ी अड़चन हैं। क्योंकि दुकान वही रहेगी, ग्राहक वही रहेंगे, जूता वही रहेगा, बेचना वही है, बेचने वाला, लेने वाला सब वही है। लेकिन एक आदमी अपनी पूरी मन:स्थिति बदलकर वहाँ जी रहा है। सब पुराना है सिर्फ एक मन को बदलने की आकांक्षा से भरा है। इस सब पुराने के बीच इस मन को बदलने में बड़ी दुरूहता होगी। यही तपश्चर्या है। इस तपश्चर्या से गुजरना अद्‌भुत अनुभव है। और ध्यान रहे जितना सस्ता संन्यास मिल जाये उतना गहरा नहीं हो पाता, जितना महंगा मिले उतना ही गहरा हो जाता है। संसार में संन्यासी होकर खड़ा होना बड़ी तपश्चर्या की बात है।

रोड़ों की मूर्तियाँ बन जाय, यह कितनी आश्चर्य जनक बात है? रजकण सिर पर चढे यह कितना विकास है। साधारण लोग हमारे आदर के पात्र बन जायें, इसके पीछे हमारी कृपा नहीं, उनकी सेवा और उनका प्रेम है। सुखी हैं वे लोग, जिनमें दुख की अनुभूति ही नहीं होती क्योंकि वे हनुमान की भाँति कर्म में इतने तल्लीन हो जाते हैं कि सोचने की शक्ति ही शान्त हो जाती है। हर व्यक्ति के विकास का अपना तरीका है, जो विलक्षण होता है पर इतनी भिन्नताओं के उपरान्त भी एक जगह सभी ज्ञानी, भक्त और कर्मयोगी आकर मिला करते हैं। उसी स्थान को विकास के मील का पत्थर कहा जाता है।

– पू. तनसिंहजी

शक्ति तत्त्व और पूजा पद्धति

– *स्वामी सारदानन्द*

या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः।।

(दुर्गासप्तशती, 5/32-34)

'जड़, चेतन सभी प्राणियों के भीतर कहीं गुप्त और कहीं व्यक्त भाव से अवस्थित शक्तिरूपिणी देवी को हम बारम्बार प्रणाम करते हैं।'

हे पाठक, नवीन युग में नवीन उद्यम से सनातनी शक्ति पुन: जागृत हुई है। भगवान् श्रीरामकृष्णदेव के अलौकिक त्याग, तपस्या और निरंतर सप्रेम आह्वान से देवी प्रबुद्ध हुई है और नरदेव श्रीविवेकानन्द की गुरुगत एकान्त भक्ति से प्रसन्न होकर संसार के परमकल्याण-साधन में नियुक्त हुई है। अत: समग्र भारत और समय आने पर समग्र पृथ्वी, इसके पवित्र स्पर्श से नवीन भाव से पूर्ण होकर एक दिन कृतार्थ होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं है। क्योंकि ब्रह्म की सत्ता से ब्रह्मशक्ति सदा अमोघ और अविनाशी है तथा सब के अन्तर में निहित होकर सदा सब को नियन्त्रित करती है।

शक्ति के विचित्र प्रभाव से ही वट के दाने के समान बीज में विशाल वृक्ष, मांसपिण्डरूप मनुष्य शरीर में जड़जगत्-नियामका चैतन्यमयी बुद्धि तथा आकाश की अपेक्षा भी अधिक सूक्ष्म इन्द्रियातीत मन में समस्त ब्रह्माण्ड प्रतिष्ठित है। साधारण शक्ति का प्रभाव जब ऐसा अद्भुत है तो अन्तर्जगत् की नियामिका आध्यात्मिक शक्ति की महिमा कैसे समझी जा सकेगी? इसी कारण अनादिकाल से मनुष्य उसी दैवी शक्ति की पूजा में जीवन-अर्पण कर रहे हैं। अब संसार में पुन: नवप्रबोधित शक्ति की पूजा प्रचारित होगी। भारत पुन: भगवान् श्रीरामकृष्ण द्वारा प्रबोधित सनातनी ब्रह्मशक्ति की पूजा कर स्वयं धन्य होगा तथा दूसरे देशों को भी धन्य करेगा। अत: शक्तितत्त्व और शक्तिपूजा के सम्बन्ध में दो-चार बातें कहने का यही उपयुक्त समय है।

वेद कहते हैं-प्राचीन होने पर भी शक्ति नित्य नवीन है; अव्यक्त भाव से जब वह व्यक्त होती है तब वह नवीन प्रतीत होती है। इसी कारण श्रीरामकृष्णदेव कहते थे-''चिक की ओट में देवी सदा ही खड़ी हैं।'' शक्ति की ह्रासवृद्धि नहीं है, लोप होना तो दूर की बात है। घने या सूक्ष्म आवरण के भीतर से देखकर ही हम लोग उसका कभी ह्रास और कभी वृद्धि, फिर कभी उसके एकदम लोप होने की कल्पना करते हैं।

एक शक्ति ही न जाने कितनी बार गुप्त से व्यक्त और व्यक्त से गुप्त भाव को प्राप्त हुई, इसे कौन बता सकता है? जितनी बार व्यक्त होती है, उतनी बार वह नयी मालूम होती है; जितनी बार गुप्त होती है, उतनी बार लुप्त के समान अनुभूत होती है। अनादिकाल से शक्ति का यही खेल चला आ रहा है। देश, महादेश, पृथ्वी, अनन्त जगत् तथा जाति, परिवार, समाज आदि को लेकर यही खेल सदा से चला आ रहा है। न जाने कितने ग्रह विचूर्ण हुए, कितने देश पर्वत में परिणत हो गये, कितने देश समुद्र के गर्भ में लीन हो गये, कौन इसका निर्णय करेगा? हिमाच्छन्न हिमालयश्रृंग में समुद्रगर्जन का तथा समुद्रगर्भ में देशों और नगरों के अस्तित्व का इतिहास विद्यमान है। यह बात प्रसिद्ध ही है-'शत वर्ष में जनपद, फिर शत वर्ष में अरण्य।'

इसी प्रकार कितनी जातियाँ और समाज उन्नत, अवनत और फिर से उत्थित हो रहे हैं, इसका विवरण कौन करेगा? दूसरी ओर शैशव, यौवन और वार्धक्य में व्यक्तिगत शक्ति का तारतम्य किसने प्रत्यक्ष नहीं किया है? पुनर्जन्म में उसी शक्ति का पुनर्विकास भारत के किन योगी ऋषियों ने अनुभव नहीं किया है? सोचकर देखने से-प्रफुल्ल कमल के ऊपर अधिष्ठित लघुकाय अपूर्व सुन्दरी द्वारा बार-बार गज को निगलने और पुन: उगलने की कथा कब कवि-कल्पना नहीं प्रतीत होती। अथवा

देवर्षि नारद द्वारा दृष्ट भगवती माया के सुई के छेद में से बार-बार हाथी का प्रविष्ट कराने और निकाल लेने की कथा में सन्देह नहीं किया जा सकता। भगवान् श्रीरामकृष्णदेव को एक बार जगज्जननी महामाया का स्वरूपतत्त्व जानने की अभिलषा हुई। उन्होंने देखा-एक अनुपम सुन्दर नारी ने एक सर्वांगसुन्दर पुत्र प्रसव किया और उसके पालन-पोषण में अनेक कष्ट स्वीकार किये, फिर कुछ समय के अनन्तर उसे अपने ही मुखगह्वर में फेंक दिया। शक्तितत्त्व की मीमांसा करने से शक्ति एकाधार में प्रसव और प्रलयरूप विपरीतगुणधारिणी है, यह बात परम सत्य रूप से अनुभूत होती है। आधुनिक दार्शनिकों ने भी ऐसा ही सिद्धान्त किया है कि शक्ति का विनाश या परिणाम का ह्रास नहीं है। उसका केवल गुप्त और व्यक्त भाव होता है।

भावराज्य में भी वैसा ही होता है। भावराज्य या सूक्ष्म मनोराज्य में भी शक्ति का ऐसा ही खेल विद्यमान है। एक जाति, समाज या व्यक्ति के द्वारा उपलब्ध व्यावहारिक और पारमार्थिक भाव क्रमश: समय पर अंकुरित, वर्धित, परिणत और लुप्त होकर फिर से वही भावतरंग दूसरी जाति, समाज या व्यक्ति के भीतर प्रविष्ट और प्रकाशित होकर नये रूप में उपलब्ध होती है। महाशक्ति की विचित्र लीला में वह दूसरी जाति उसके पुरातनत्व का अनुभव न करके यही सोचती है कि ऐसा उन्नत भाव संसार में पहले कभी उदित नहीं हुआ था और मदगर्व से फूलकर इस बात का प्रचार करती है कि जटिल जीवनसमस्या का एक अपूर्व सुगम समाधान अभी उसी के द्वारा आविष्कृत हुआ है।

आधुनिक यूरोप और अमेरिका इसके उदाहरण-स्थल हैं। प्राचीन भारत, मिस्र देश, यूनान तथा अन्यान्य प्राचीन देशों की सामाजिक, नैतिक, आध्यात्मिक तथा अन्य प्रकार की उन्नति का भावप्रवाह अब उन देशों में कुछ परिवर्तित और पुष्ट होकर उदित होने से उन नये देश के लोगों का मदगर्व प्रत्यक्ष है। पाश्चात्य दार्शनिक! तुम क्रमविकास, स्त्री-निर्वाचन, सन्तानानुगत पितृगुणवाद आदि को लेकर यह कहकर समस्त संसार को पुकार-पुकारकर बता रहे हो कि 'जीवनसमस्या का सरल समाधान आविष्कृत हुआ है'- किन्तु तुम्हारा गर्व वृथा है। भावतरंग पुन: स्थानान्तरित होगी-प्रकाश के अनन्तर अन्धकार और जीवन के अनन्तर मृत्यु अवश्य आकर उपस्थित होगी। जीवनसमस्या का एक जातिगत समाधान सुदूरपराहत ही रह जाएगा। व्यक्तिगत समाधान अनादिकाल से जैसा होता आ रहा है वैसा ही होगा-'पतंग लाखों में दो-एक ही कटी है' और कटेंगी।

यूरोप! तुम क्षात्र-शक्ति और वैश्य-शक्ति की उपासना में हृदय का बिन्दु बिन्दु रक्त दे रहे हो। उस कठोर तपस्या ने ही तुम्हारे सिर को उन्नत किया है। अमेरिका! तुम उन दोनों शक्तियों के साथ शूद्र-शक्ति की आराधना में सचेष्ट हो। इसी कारण तुम्हारी शीघ्र-गति से राष्ट्रीय उन्नति हो रही है। किन्तु तुम्हीं लोग फिर से महाशक्ति की आराधना में उपेक्षा दिखाओगे तथा कालान्तर में उसे भूल जाओगे। पुन: वह 'सहस्रपरमा शतमूला शतांकुरा' दूर्वादेवी दूसरों की आराधना से प्रसन्न होकर अन्यत्र प्रकट होगी। यही नियम है!

गुप्त से व्यक्त और व्यक्त से गुप्त-शक्ति के इन दोनों भावों का खेल संसार में सदा सर्वत्र विद्यमान है। जिस व्यक्ति, समाज और जाति में शक्ति के प्रथमोक्त भाव का खेल हो रहा है उसी को जीवित, उन्नतिशील और भाग्यवान समझा जाता है औ जिसमें शेषोक्त भाव का खेल हो रहा है उसमें वार्धक्य, श्रीहीनता, अवनति और मृत्यु की छाया उपलब्ध हो रही है।

फिर, बहुत समय तक गुप्त भाव से अवस्थित शक्ति का विकास जिनके शरीर-मन के आश्रय से होता है, या व्यक्त शक्ति की कार्यप्रणाली जिनके द्वारा यथार्थ रूप से गठित होती है, श्रद्धाभक्तिप्रणोदित होकर उन्हीं को हम उच्चासन पर उपवेशन कराने में बाध्य होते हैं। जड़राज्य में वे आविष्कारक हैं, मनोराज्य में दार्शनिक है, और धर्मराज्य में मुक्तस्वभाव ऋषि अथवा शुद्धसत्त्वविग्रहधारी अवतार है।

पंचेन्द्रियों के द्वारा हम जिसका स्पर्श करते हैं, मन के द्वारा जिस पर विचार किया जाता है अथवा कल्पना द्वारा जिसका अनुमान या गठन किया जाता है, वह सभी शक्ति की सहायता से होता है, सभी शक्तिराज्य के अन्तर्गत हैं। वेदमुख से देवी कहती हैं–

"मया सोऽन्नमत्ति यो विपश्यति यः प्राणिति यः ईं शृणोत्युक्तम्।
अपन्तवो मां त उपक्षियन्ति श्रुधि श्रुतं श्रद्धिवं ते वदामि।।
अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवा उ।
अहं जनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आ विवेश।।"

(ऋग्वेद, 10/125/4,6 देवीसूक्त)

"मेरे द्वारा ही लोग जीवित हैं, अन्नग्रहण और शब्दश्रवण आदि करते हैं। मुझ पर जो उपेक्षा दिखाता है, वह विनष्ट हो जाता है। तुम श्रद्धावान् हो, इस कारण तुम्हें ऐसी बातें कह रही हूँ। ब्रह्मशक्ति के हिंसक असुरों के वध के लिये धनुर्धारी रुद्र की भुजाओं में मैं ही शक्ति रूप से अवस्थित थी। मैं ही लोकरक्षा के लिये युद्धकार्य में नियुक्त होती हूँ। मैं ही आकाश और पृथ्वी के भीतर प्रविष्ट होकर विराजमान रहती हूँ।"

शक्तिराज्य की उपर्युक्त अद्‌भुत विस्तृति की जिसने एक बार उपलब्धि की है वह समझ सका है कि शक्तिपूजा में ही सारा संसार अनादिकाल से लगा हुआ है। शक्ति की आराधना के अतिरिक्त संसार में अन्य किसी प्रकार की उपासना कभी नहीं हुई और न होगी। जड़ और चेतन सभी युग-युगान्तर से जीवनभर शक्ति की आराधना में व्यस्त रहकर भी पूजा समाप्त नहीं कर सके और न कभी कर सकेंगे। यदि कभी कर भी सकें तो वह शक्ति की ही सहायता से। "सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।" (दुर्गासप्तशती, 1/56)

प्रसिद्धि है, शक्तिपूजा का फल तुरन्त मिल जाता है, विशेष रूप से इस कालिकाल में; अन्य सभी देवता अब निद्रित हैं। शक्तिपूजा-सम्बन्धी तंत्रों के अतिरिक्त अन्य शास्त्र निर्विष भुजंग के समान वृथा ही फुफकारते हैं। बात संपूर्ण सत्य न भी हो, आंशिक सत्य तो अवश्य ही है। क्योंकि प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है कि मनुष्यों ने जड़ या मनोराज्य में जो कुछ अधिकार प्राप्त कर लिया है वह सब शक्ति की आराधना का फल है। जो साधारण मनुष्य को जड़शक्ति रूप से प्रत्यक्ष-गोचर हो रही है, उसी की आराधना के फलस्वरूप मनुष्य के लिये शरीरविज्ञान, प्रेतविद्या, रोगशान्ति, महामारी का प्रतिकार, आहार-संचय, धनागम के विविध उपाय, युद्ध-विग्रह के उपयोगी अस्त्र-शस्त्रों का आविष्कार आदि सम्भव हुए हैं। इसी प्रकार मानसिक शक्ति रूप से जो परिचित हैं, उसकी उपासना से मनुष्य को मनोविज्ञान, कवित्व, संयम, विवाह-विधान, सभ्यता, नीति, समाजगठन, राजनीति आदि हस्तगत हुए हैं, तथा आध्यात्मिक शक्ति के उद्बोधन से ब्रह्मचर्य, सत्य, संतोष, शम, दम आदि साधन-सम्पत्ति और अन्त में सर्वबाधाविनिर्मुक्तिरूप परम पुरुषार्थ भी उसके अधीन हुआ है। यह बात सत्य है कि अनेक मनुष्यों द्वारा बहुत समय तक अनेक प्रकार से शक्ति-उपासना के फलस्वरूप वैसी उन्नति उपस्थित हुई है। किन्तु मनुष्यों ने सभी कालों में जितनी श्रद्धाभक्ति के साथ जिस किसी शक्ति की जिस परिणाम में उपासना की है उसी परिमाण में फल भी पाया है। आधुनिक युग के उपासकों ने भी यह बात प्रत्यक्ष की है।

(क्रमशः)

यदि किसी में साधक जीवन की पुकार है, तो सब कुछ है। उसे कोई पाप मार नहीं सकता, वही सब पापों को मार डालेगा। उसे कोई पाप जला नहीं सकता, वही सब पापों को जला डालेगा। साधना-गत जीवन में यदि यह पुकार नहीं है, तो ज्ञान व्यक्ति का बोझ है, जिसमें व्यक्ति स्वयं ही दबकर मर जायेगा। उसके समस्त गुण अपनी प्रभा खोकर मृत हो जायेंगे।

– पू. तनसिंहजी

पुरुषार्थी बनें

– *संकलित*

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत शतं समा:।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।।

मनुष्य को इस लोक में अपना कर्तव्य करते हुए ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करनी चाहिए। हे मानव! तेरे लिये यही एक मार्ग है, इससे उत्तम दूसरा कोई मार्ग नहीं है। कर्तव्य कर्म करते रहने से मनुष्य में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता है। अत: इस जगत में परम पुरुषार्थ करते हुए ही दीर्घ जीवन प्राप्त करने की इच्छा कर। पुरुषार्थमय जीवन व्यतीत करना ही मनुष्य का परम धर्म है।

जिन्दगी को बनाने के लिये, जीवन में निखार लाने के लिये कठिनाइयों को जीवन-विकास के लिये एक अनिवार्य उपाय मानकर उनका स्वागत करना चाहिए। उसकी चुनौती स्वीकार करनी चाहिए और एक आपत्ति को सौ कष्ट सहकर भी दूर करते रहना चाहिए। यही पुरुषार्थ है; यही मनुष्यता और यही सफलता तथा उन्नति का एकमात्र उपाय है। ***असमं क्षतभसमा मनीषा।*** अर्थात् अतुलित शौर्य और असीम बुद्धि धारण करो। जहाँ अदम्य साहस और दूरदर्शिता है, वहाँ सब कुछ है। ***अद्या नो देव सवित: प्रजावत् सावी: सौभगन्। परा दु:ष्वप्नयं सुव।।*** याद रखिए, जो ईश्वर की आराधना के साथ-साथ पुरुषार्थ और परोपकार करते हैं, उनके दुख और दारिद्र्य दूर होते हैं और ऐश्वर्य बढता है। ***मर्त्याहव अग्ने देवा आसु:।*** अर्थात् इस दुनिया में मनुष्य शुभ कार्य करके ही देव बनते हैं। जैसे भी बन पड़े शुभ कर्म करो और इसी शरीर से भू-सुर का पद प्राप्त करो। धर्म कर्तव्यों का पालन करने वाला ही देवता है।

अत: मनुष्य सच्चा आदमी बनकर जिये, यही बहुत है। मनुष्य का सच्चा गौरव इस बात में है कि उसे मानवीय सद्गुणों से सम्पन्न, सभ्य, सुसंस्कृत एवं सज्जन कहा जाये। मनुष्य की महत्त्वाकांक्षा यह होनी चाहिए कि उसके पास मानवीय सद्गुणों का भण्डार अधिकाधिक मात्रा में विकसित रहे। किसी की प्रगति, सम्पन्नता एवं बुद्धिमत्ता की सर्वोत्तम कसौटी यह है कि वह पाश्विक दोष-दुर्गुणों को परास्त करता हुआ अपने दिव्य मानवीय सद्गुणों को बढावे और जीवन-क्रम को आदर्शएवं अनुकरणीय बनावे। ***मानवीय पुरुषार्थों में सबसे बड़ा पुरुषार्थ आत्म निर्माण ही है।*** सेवा से बढकर मनुष्य जीवन की सफलता और कुछ नहीं हो सकती।

जहाँ कहीं किसी व्यक्ति में हम उत्तम गुण, उच्च चरित्र, स्वास्थ्य, सौंदर्य या कोई प्रशस्त विशेषता देखते हैं; हमारे अन्दर कहीं से चुपचाप एक उच्च भाव पैदा होता है, काश हम भी यही उच्च दैवी भाव या भव्य शक्तियाँ प्रदर्शित कर पाते। प्रत्येक अच्छाई हम में एक जागृति पैदा करती है, हमारी सोयी हुई आत्मशक्ति को जगाती है तथा हमें श्रेष्ठता की ओर बढने का गुप्त संदेश करती है। श्रेष्ठता और अच्छाई की ओर हमारा उत्साह और रुचि पैदा करने वाली हमारी गुप्त आत्मशक्ति ही है। दूसरों के अच्छे और सद्गुणों के प्रति हमारे हृदय में ललक और अनुकरण की इच्छा इस गुप्त आत्मशक्ति के भण्डार के ही कारण होती है। हम केवल सत् मार्ग और प्रवृत्तियों, ऊँची कलाओं और देवत्व के दिव्य गुणों की ही ओर अग्रसर होते हैं। प्रत्येक दिव्य गुण का अमृत-कुण्ड हमारी आत्मा है। वह ऐसा दिव्य केन्द्र है, जिसमें से हमारी उच्च प्रवृत्तियाँ अग्नि से चिनगारियों की भाँति फैला करती है। जहाँ पृथ्वी में जल छिपा होता है, वहाँ हरे-भरे वृक्ष लहलहाते दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार जहाँ मनुष्य का आत्मतत्व जागरूक होता है, वहाँ हमारी प्रवृत्ति आत्मा के दिव्य गुणों की ही ओर होती है। वह देवत्व की ओर अग्रसर होती है। आत्म-तत्व अच्छाई से प्रेम करता है। संसार और समाज की सब श्रेष्ठताओं के रूप में हमारा आत्म-तत्व ही बह रहा है। श्रेष्ठता और सौंदर्य का मूल केन्द्र हमारी सत्-चित्-आनन्द स्वरूप वह आत्मा ही है।

पृथ्वी को स्वर्ग बनाने के लिये पहला तत्व है-स्वस्थ शरीर। दूसरा तत्व है-मनुष्य का जीवन के प्रति दृष्टिकोण। निराशावादी दृष्टिकोण लेकर जीवन में प्रविष्ट होने वाले व्यक्तियों को निराशा, कठिनाई, असफलता के अतिरिक्त और क्या मिलेगा? उन्हें रोने-पीटने के लिये कहीं भी मसाला मिल ही जाएगा। वे दुखी रहने के आदी हैं। यही मानसिक-नरक की सृष्टि करेगा। इसके विपरीत आशावादी व्यक्ति प्रसन्न रहने, उत्साहित होकर जीवन-कार्य में प्रविष्ट होने का सहारा ढूंढ लेगा। मानसिक दृष्टि से दोनों की आशा-निराशा का दृष्टिकोण स्वर्ग-नरक का सृष्टा है। जैसा हमारे मन के भीतर है, वैसा ही हमें आसपास, इधर-उधर, सर्वत्र-प्रतीत होता है। अपने अन्तर की प्रतिछाया ही हमें संसार में सुखी-दुखी बनाया करती है।

हम चाहें तो उत्तम मंत्रणा द्वारा अपने अन्दर-बाहर, सर्वत्र प्रेम का, आनन्द और उत्साह का स्वर्ग निर्मित कर सकते हैं, आसपास के वातावरण को अपनी पवित्र भावनाओं से स्वर्ग के सौरभ से युक्त कर सकते हैं। इसके विपरीत कुत्सित इच्छाओं से हम अन्दर-बाहर नरक ही नरक बना सकते हैं। बिच्छु की तरह आप विष एकत्रित करेंगे या मधुमक्खी की तरह मीठा शहद?

आशावादी उत्साह-वर्द्धक दृष्टिकोणसे मनुष्य चिंता, भय और भाँति-भाँति की अनेक बीमारियों को अच्छी तरह निकाल कर बाहर फेंक सकता है। जीवन के प्रति उसे प्रेम होना चाहिए। सहानुभूति से अपनी चिन्ताओं के कारणों को दूर कर हितैषी भावनाओं में रमन करना चाहिए।

नवीन मानस शास्त्रियों ने खोज की है कि जीवन में ऐसी बहुत ही कम वस्तुएँ हैं, जिनका प्रभाव प्रसन्नता से अधिक हमारे मन तथा शरीर पर पैदा होता है। आत्मा शरीर तथा मन सबका मुख्य सामर्थ्य आनन्द ही है। आनन्द विषयक दृष्टिकोण न बनने से हजारों मनुष्यों का नाश हो गया है। अत: दीर्घ जीवन, आनन्द और स्वास्थ्य के लिये मनुष्य को चिंतित न रहना चाहिए। शरीर प्रसन्नता, आशा, उल्लास और शान्ति की माँग करता है। आवश्यक तत्व न प्राप्त होने से आत्मा को भी कष्ट होता है। हमें सदा प्रसन्न और उल्लासमय रहकर शरीर की माँग को पूर्ण करना चाहिए।

यदि हम सदा अपने मन में यौवन के दिव्य प्रवाह को बहाते रहें, सदैव यौवन के आदर्शों को सामने रखकर उनके लिये अपनी शक्तियों में विश्वास रखकर उद्योग करें, यदि हम हर समय शक्ति और स्वास्थ्य के नियमों को अपने सामने रखें, चिन्ता, भय और संशय को मानसिक-परिधि से निकाल डालें, तो बुढापा हमसे अवश्य डरेगा। आपके हृदय में जिन्दादिली नाम की जो दूब उगी है, उस पर उत्साह की फुहारें छोड़ते रहिए।

पूर्ण, ब्रह्मचर्य से सदाचार के नियमों का पालन कीजिए। याद रखिए, इस कल्पना कि अमुक उम्र के बाद मनुष्य की ढलती अवस्था प्रारम्भ हो जाती है-उसकी शक्तियाँ मंद पड़ने लगती है, मानव समाज को बड़ी हानि पहुँचाई है। इस प्रकार जो घास-फूस मानसिक उद्यान में जड़ पकड़ गई है, उसका अभी से उन्मूलन प्रारम्भ कीजिये। मनुष्य कभी बूढा नहीं होता, वह स्वयं ही अपने आपको बूढा समझने लगता है। आप तब तक बूढे नहीं हो सकते, जब तक आपके जीवन में मधुरता और उत्साह बना रहता है। जब तक आपके हृदय में महत्त्वाकांक्षा की दिव्य ज्योति प्रकाशित रहती है जब तक आपके मन में बुढापे का डर नहीं उत्पन्न होता। जब तक आपके खून में कार्य करने की शक्ति का प्रवाह बना रहता है और आपकी शारीरिक शक्ति का ह्रास नहीं होता।

आप इन्हीं सुखमयी शक्तियों से अपने हृदय में एक आनन्दमय भवन का निर्माण कीजिये। ***पाश्चौ अगाम नृत्ये हसाय***- यह जिन्दगी हँसते खेलते हुए जीने के लिये है। हमें फूलों की तरह हंसते-मुस्कराते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। प्रकृति को देखिए, सर्वत्र आनन्द का राज्य है। शीतल मंद समीर किस आनन्द में बह रहा है। उद्यान में पक्षियों का कलरव सुनिए। सरिताओं, निर्झरों तथा छोटे-बड़े नालों का जल किस मस्ती से गिरता बहता है। एक-एक बूंद बिखर कर मानो हंस उठती है और कहती है, हे संसार वालो! आनन्द में खिलखिलाओ, मुस्कराकर जीवन व्यतीत करो, व्यर्थ की चिंताएँ छोड़ो।

विचार-सरिता

(त्रिचत्वारिंशत लहरी)

- विचारक

अनुभवी महापुरुषों ने बताया है कि स्थूल शरीर में घटित होने वाले छः विकार प्रत्यक्ष देखे जा सकते हैं। यथा 1. अस्ति (गर्भ), 2. जन्म, 3. बाल्य अवस्था, 4. युवावस्था, 5. वृद्धावस्था (बुढ़ापा), 6. मरण। इन षट्विकारों को तो हम घटित हुए देख पाते हैं और ये छः विकार जो हैं वह इस देह में एक बार ही घटित होते हैं। इनकी पुनावृत्ति वर्तमान देह में सम्भव नहीं। जैसे गर्भ वाली स्थिति तभी तक है जब वह गर्भस्थ है। जन्म वाली स्थिति भी केवल जन्म के समय है बाद में इसकी पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। ऐसे ही बाल्यकाल, युवावस्था व जरा तथा मृत्यु भी एक-एक बार ही घटित हो सकती है।

परन्तु मनीषियों ने अपने अनुभव द्वारा बताया कि शरीर की चार अवस्था ऐसी भी है जो सूक्ष्म देह से जुड़ी हुई है तथा उनकी पुनरावृति जीवनपर्यन्त चलती ही रहती है। उन चार अवस्थाओं का नाम है- 1. जाग्रत, 2. स्वप्न, 3. सुषोप्ति व 4. तुरीय। जाग्रत, स्वप्न, सुषेप्ति को तो हम सभी अनुभव कर ही रहे हैं कि एक की उपस्थिति में दो का अभाव है और ये सभी के अनुभव की बात है। चौथी अवस्था जिसे शास्त्रकारों ने ***तुरीय*** कहा है, उसे हम आज की विचार सरिता के माध्यम से समझने का प्रयास करेंगे।

तुरीय अनुभव की एक ऐसी अवस्था है जिसमें मन और मस्तिष्क में कुछ भी नहीं चलता है। यह भी नहीं कि कुछ नहीं है। ऐसी पूर्ण जाग्रति का नाम तुरीय अवस्था है। यह ध्यान की चौथी (तुरीय) अवस्था है। इससे पहले की तीन अवस्थाओं (जाग्रत, स्वप्न, सुषोप्ति) में इन्द्रियों द्वारा महसूस की गई बात तथा शून्यता महसूस की जाती है। तुरीय को इस संदर्भ में समझने की जरूरत है कि चेतना के तीन स्तर हैं।

1. जब हम जाग्रत अवस्था में होते हैं तो जो दिखता है और जो कल्पना करते हैं वो सब हमारे मन में चलता है।

2. जाग्रत के संस्कार ही अर्द्धनिद्रा में हमारे मन पर तैरते हैं और जाग्रतवत सत्य प्रतीत होते हैं। जिस प्रकार जाग्रत में मन पर सुख-दुःख की अनुभूति होती है, वैसी ही अनुभूति स्वप्न अवस्था में भी होती है। वहाँ हम वही दृश्य देखते होते हैं जो हमारी कल्पना व स्मृति में है।

3. तीसरी अवस्था सुषुप्ति में गाढ़ निद्रा के कारण कुछ भी कल्पना नहीं करते। वहाँ मन, बुद्धि अज्ञान के आसरे गट्ठा रूप हो जाते हैं। जिस प्रकार जल जब बर्फ की आकृति में आ जाता है तो वह क्रियाहीन हो जाता है, ऐसे ही मन की सुषुप्ति में गट्ठारूप होने से संकल्प-विकल्प नहीं करता और वह सुषुप्त हो जाता है। इसीलिए उसे सुषुप्ति अवस्था का नाम दिया गया है।

इस चौथी अवस्था जिसे ***तुरीय*** कहा गया है। यह पूर्ण जाग्रति की अवस्था होने से इसे तीनों का साक्षी माना गया है। इस अवस्था में यह भी पता नहीं चलता कि मुझे कुछ भी पता नहीं चल रहा है। वहाँ एकदम शून्य है। इस अवस्था को आत्मिक अनुभूति का नाम भी दिया गया है। परन्तु वहाँ यह भी अनुभूति नहीं है कि मुझे कोई अनुभूति नहीं हो रही है या हो रही है।

ईश्वर ज्योति स्वरूप है। घट में दिखने वाला प्रकाश उसी का रूप है। गीता में भी भगवान ने यह ही फरमाया है कि समस्त ज्योतियों में परम ज्योति मैं ही हूँ। इस जीव को उस ज्योति स्वरूप परमात्मा का अनुभव हो जाय यही उसका परम लक्ष्य है। इन्द्रियातीत अनुभूति का नाम ही तुरीय अवस्था है।

किसी वस्तु का पता चलना, प्रेरणादायी जरूर है पर उसकी प्राप्ति होना ही मुख्य बात है। वस्तु की प्राप्ति ही मुख्य उपलब्धि है। जिस प्रकार यह पता चल जाए कि कोई राजा होता है। उसकी शक्ति अद्वितीय है। वह अनंत विभूतियों का स्वामी होता है। सभी दास-दासियाँ व अनुचर उसकी सेवा में ही अपना कर्तव्य समझकर सेवा

देते हैं। ऐसा राजा होता है, उसकी वैभवता व सम्पन्नता के बारे में जानकारी तो मिल गई पर इस जानकारी से जानने वाला अभी राजा तो नहीं हो गया। सबसे बड़ी उपलब्धि तो राजा बनने में है। जब तक वह स्वयं राजा नहीं बन जाता तब तक राजापने की वैभवता व श्रीपने का बखान करने से वह आनन्द कहाँ जो एक सम्राट को प्राप्त है। इतने दिनों तक राजा की वैभवता आदि का वर्णन इतिहास व ग्रन्थों में पढ़ा व सुना था और राजा को देख भी लिया कि राजा ऐसा होता है। यह देख लेना भी अभी स्वयं को राजा से अलग ही देख रहा है।

इसी प्रकार आत्मतत्व का प्रकाश दिख जाना अलग बात है और आत्म तत्व में स्थिति पा जाना बड़ी उपलब्धि है। इसलिए यह कहना बड़ा सरल है कि आत्मा सत्य है, संसार असत्य है। यह जान लेना काफी नहीं है, क्योंकि यह तो बुद्धि ज्ञान है। जानकारी मात्र है। महत्त्वपूर्ण तो यह है कि ''मैं ही सत्स्वरूप आत्मा हूँ।'' भीतर की ज्योति के दर्शन होने का अभिप्राय यह है कि आत्मतत्व होने का प्रमाण-पत्र है, उसे प्राप्ति नहीं कही जा सकती। अहंब्रह्मास्मि कहना आसान है और यह बात भी सत्य है, पर क्या कहने वाले की स्थिति वहाँ तक है? क्या उसने ब्रह्मात्मैक्य बोध की उपलब्धि पा ली है? यदि उत्तर 'हाँ' में है तो काम पूरा है। अन्यथा अहंब्रह्मास्मि कहना भी असत्य जैसा ही है।

विवेक चूड़ामणि के 66वें श्लोक में आया है- समस्त शत्रुओं पर विजय प्राप्त किये बिना व संपूर्ण भूमि का अधिपत्य ग्रहण किये बिना कोई अपने को राजा कहने से राजा नहीं हो सकता। वैसे ही आत्मतत्व को जानकर आत्मतत्व में स्थित हुए बिना कोई अपने को ब्रह्मज्ञानी कहने से ब्रह्मज्ञानी नहीं हो जाता। इसके लिये दृढ़ अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की आवश्यकता है।

ज्योति स्वरूप आत्मदर्शन हो जाने पर भी यदि मन विषयों में रमण कर रहा है, मन का भटकाव अभी बन्द नहीं हुआ है तो विषयों की गुलामी के कारण उसकी दीनता अभी गई नहीं। ऐसी स्थिति में आत्मदर्शन का लाभ नहीं। स्वयं का अनुभव यदि यह नहीं है कि स्वयं की अवस्था में ही वह स्थिति पा गया है, जो कि सिद्ध अवस्था है। यह तुरीय भी सिद्ध अवस्था है। तुलसीदास जी ने मानस में लिखा है कि जो परवश है वह जीव है तथा जो स्ववश है वह भगवान है। जो स्व में रहता है वही स्वयंभू है, वही परमात्मा है। विकसित चेतना ही ब्रह्म प्रकाश की अनुभूति कराती है। स्वस्थिति के अभाव में ही हम तीन अवस्थाओं में भटकते रहते हैं। ये तीनों अवस्थाएँ ही जीव की सीमा है, यही जीव की हद है। वह इन तीनों से बाहर बेहद में जाने की कला को जानता नहीं इसलिए अभी वह जीवकोटि में ही है।

शिव का एक नाम त्रिपुरारि कहा गया है। वह नाम इसलिए कहा गया है कि त्रिपुर नाम के राक्षस के तीन पुर थे, उनको छेद कर शिव ने उसका वध किया इसलिए शिव का एक नाम त्रिपुरारि पड़ा। जब तक हमारी चेतना जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं में हैं और हमने इन तीनों अवस्थाओं से तादात्म्य कर लिया है, तब तक हम अवस्थाओं के साक्षी नहीं बन पाते। हमारी चेतना उन अवस्थाओं से अलग होते हुए भी उसी रूप हो जाती है। क्योंकि हमारी चेतना स्व में नहीं, पर में स्थित है। इसीलिए, ऐसे जीवों को अज्ञानी की श्रेणी में रखा गया है। जब तक हम इन तीनों अवस्थाओं को साक्षीभाव से नहीं समझ पाएँ, तब तक इनका तादात्म्य हमको भटकाएगा। हम इन तीनों अवस्थाओं के घेरे को तोड़ नहीं पाएँगे और जन्मों जन्म इन्हीं स्थूल, सूक्ष्म व कारण शरीरों की अनुभूति करते रहेंगे।

राजा जनक के रूप में भिखारीपने की अनुभूति ने जनक को विवश किया कि मैं वास्तव में कौन हूँ? मैं भिखारी हूँ अथवा राजा? इसी जिज्ञासा ने जनक को झकझोर दिया। वह इसी खोज में जुट गये कि मैं वास्तव में कौन हूँ। इसी उत्कट जिज्ञासा ने महाज्ञानी अष्टावक्र से भेंट करा दी। जनक और अष्टावक्र के इस आत्मतत्व संवाद का नाम ही अष्टावक्र गीता है। जो दुनिया का श्रेष्ठतम मानव-उद्धार का शास्त्र है। राजा जनक को जब

स्थितिप्रज्ञ बोध हुआ तब यह प्रत्यक्ष अनुभूति हुई कि मैं जाग्रत व स्वप्न अवस्थाओं के तादात्म्य के कारण अपने को राजा व भिखारी समझ रहा था। वास्तव में तो मैं इन तीनों अवस्थाओं का साक्षीभूत आत्मा हूँ जो इन तीनों के व्यवहार को साक्षीभाव से देख रहा है।

ऐसे ही हम जब जाग्रत, स्वप्न या सुषुप्ति में होते हैं और उसी को अपना रूप मान रहे होते हैं, वह सत्य नहीं है। तीनों ही अवस्था के साक्षीभाव में जो तुम विद्यमान हो वही तुम्हारा स्वरूप है। वही आत्मतत्व है। ऐसी अनुभूति की अवस्था का नाम ही तुरीय अवस्था है। यह पूर्ण जाग्रति की अवस्था है। इस सिद्ध अवस्था में भीतर का कोना-कोना प्रकाश से भर जाता है। वहाँ तिल मात्र भी अंधेरे का अस्तित्व नहीं रह जाता। ऐसे ज्ञान की इस अवस्था का नाम तुरीय है।

इस चौथी अवस्था पर आरूढ होने के लिये तीन पायदानों को पार करना होगा। पहला पायदान है जाग्रत अवस्था। प्रारम्भ हमें जाग्रत से करना होगा। तभी हम दूसरे व तीसरे पायदान को पार कर पाएंगे। इसलिए सबसे पहले जाग्रत अवस्था के दृश्य जगत को मिथ्या समझने का अभ्यास करना होगा। जाग्रत में सबसे पहले अपने देह में जो अहंभाव हो रहा है, उससे तादात्म्य तोड़ना होगा। अभ्यास यह करें कि जैसे आप खाना खाते हो तो यह समझें कि यह जो भूख लगी है वह इस शरीर के प्राणों को लगी है। खाना खाने वाला शरीर मुझ शरीरी से अलग है। मेरी चेतना सत्ता के प्रकाश में इस देह के समस्त कार्यकलाप व इन्द्रियों का व्यापार चल रहा है। मैं इस जाग्रत प्रपञ्च का द्रष्टा इस जाग्रत प्रपञ्च से जुदा चेतन आत्मा हूँ। शरीर चल रहा है, मैं अचल हूँ। जैसे गाड़ी चल रही है, ड्राइवर अचल है। वाणी वाचाल है, मैं अव्यक्त रूप से मूक हूँ। इस प्रकार जगत में नाम व रूप से जो भी अभी तक सत्य जाना गया था, उसे मिथ्या व स्वप्नवत् जानना है। ऐसा अभ्यास जब आपका सिद्ध हो जाएगा कि जाग्रत के समस्त कार्य व्यवहार में आप साक्षी-भाव में रहना सीख जाते हो तो यह प्रत्यक्ष सिद्ध हो जाएगा कि जाग्रत में जो भी भासित हो रहा है वह एकमात्र खुली आँख का स्वप्न है। दर्पण में दिखने वाले नगर के प्रतिबिम्बवत ही यह हमारे अन्त:करण में अंकित जगत की सत्ता है।

ऐसी अनुभूति के बाद दूसरा पायदान स्वप्न अवस्था का है। पहले पायदान की सिद्धि के बाद स्वप्न को भी स्वप्न समझना आसान हो जाएगा। जाग्रत के संस्कार ही तो स्वप्न अवस्था है। जब जाग्रत में जाग्रत को स्वप्न समझने की कला सिद्ध हो गई तो अब जब कभी स्वप्न-अवस्था में स्वप्न चलेगा तो उसे भी आप जाग्रत के मिथ्यात्व दृष्टिवत उस समस्त दृश्य जगत के साक्षी बनकर उस स्वप्न-अवस्था को भी मिथ्या साबित करने में सफल हो पाएंगे। उस स्वप्न सृष्टि को भी आप स्वप्न मानकर उस समय सुखी या दु:खी नहीं हो पाओगे और मात्र साक्षी भाव में आरूढ़ रहोगे।

तीसरे पायदान पर सुषोप्ति-अवस्था है। जहाँ मन, वचन, कर्म से सभी क्रियाओं का अभाव है। इसलिए दृश्य-जगत का भी अभाव है। उस अभाव के भी आप साक्षी बन सकते हो। मन, बुद्धि जहाँ लय है, उस लय अवस्था को जानने वाले उस अवस्था के प्रकाश का नाम ही चौथी अवस्था तुरीय है। तीसरी अवस्था के आनन्द की अनुभूति भी जब उस अवस्था में सिद्ध हो जाय तभी समझना कि अब आपकी चौथी अवस्था की पूर्ण जाग्रति आई है। इस पूर्ण जाग्रति का नाम ही तुरीय है। सुषुप्ति में मन, बुद्धि, चित् नहीं परन्तु सूक्ष्म रूप से अहंकार रहता है।

इस तरह से तीनों अवस्थाओं को जो अनुभव करता है, तीनों को साक्षीभाव से अपने से पृथक जो देखता है उसी का नाम तुरीय है। यह अनिर्वचनीय अवस्था है जो तीनों अवस्थाओं का साक्षी है और पञ्चकोशों से विलक्षण भी है। तीनों अवस्थाओं में बुद्धि और बुद्धि के अभाव को जो जानता है वह आपका चेतन स्वरूप है। ऐसा जानना ही तुरीय अवस्था की सिद्धि है। बाल्यकाल में गुड्डा-गुड्डी के खिलौनों में जो सत्यबुद्धि थी वह अब नहीं है। अब उस खेल से बिल्कुल अरुचि

ओर उपरामता आ गई है, ऐसे ही तुरीय अवस्था में आरूढ़ ज्ञानी के लिये जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति के भाव-अभाव से कोई प्रयोजन नहीं रहता। वह अपने स्वरूपस्थ अवस्था में रहता है। मन, बुद्धि का स्वामी बनकर उनके द्वारा होने वाले व्यवहार को मिथ्या समझता हुआ स्व में अलमस्त रहना ही ज्ञानी की साक्षीत्रय नामक तुरीय अवस्था है। ऐसी तुरीय अवस्था का ज्ञानी ही सन्यासी है। उसका सन्यास अब गृहस्थ में भी सिद्ध हो रहा है। उसे भगवा चोला पहनकर गिरि-गुफाओं में जाने की अब आवश्यकता नहीं है।

जिस प्रकार नदी के तल में एक पत्थर या चट्टान है। उसके ऊपर से जल बह रहा है। वह पत्थर बहते हुए पानी की धारा का साक्षी है। जल की धारा सर्दियों में ठंडी हो जाती है, गर्मियों में गर्म हो जाती है तथा वर्षाकाल में धारा का प्रवाह तेज हो जाता है, उन तीनों अवस्थाओं का वह पत्थर साक्षीमात्र है। उस जल में कोई पेड़ की साखा तैर रही है उसे भी देखा, कोई मृत शरीर आया उसे भी देखा, कई फूल दीप आदि भी तैरते आए और गए, उनको भी देखा पर उस पत्थर में न मृत शरीर को देखने से शोक हुआ और न फूल-दीप देखने से हर्ष हुआ। वह तो उस सब दृश्य का द्रष्टामात्र है, वह तो अपनी महिमा में टिका हुआ है। ऐसे ही तुरीय अवस्था का ज्ञानी भी व्यवहार करते समय यही समझता है कि यह सब देह के माध्यम से हो रहा है। मैं इस देह का द्रष्टा इससे भिन्न हूँ। ऐसा जानकर अपनी महिमा में रहना ही तुरीय अवस्था का प्रमाण है।

जाग्रत अवस्था के परिवर्तन में भी जो अपरिवर्तित अवस्था में है उस स्थिति का नाम तुरीय है। उपरोक्त विधि से निरंतर अभ्यास के कारण तरंगित अवस्थाओं में भी जो तरंग रहित स्थिति को पा गया है वह जीवनमुक्त अवस्था का योगी है।

ध्यान करते-करते भीतर के नाद को जब सुन पाते हैं तो उसका जो आनंद है वह स्वयं का आनंद है। उस स्थिति में श्वासें भी रुक सी जाती हैं और ज्ञानी आनंद के महासागर में तैरने लगता है, उसी में गोते लगाने लग जाता है। एक बार जिस साधक ने उस स्थिति को पा लिया जो सिद्ध अवस्था है, फिर उस आनंद को छोड़ना या नीचे उतरना उसके लिये असम्भव सा हो जाता है। यही उस योगी का महायोग है, यही पूर्ण बुद्धत्व है और पूर्ण सन्यास है। उस स्थिति में संसार के पदार्थों के भोगने की जो अंधी-दौड़ है वह स्वत: ही समाप्त हो जाती है। जैसे समझदार और बड़े होने पर बालकपन के सारे खेल-खिलौने सामने होने पर भी हमारी उनमें अरुचि हो जाती है, ऐसे ही उस पूर्ण महायोग में उतरने के बाद समस्त प्रपञ्च से उदासीनता ही उस चौथी अवस्था का लक्षण है। जहाँ एकमात्र परमात्म तत्व की प्रतीति है उसी अवस्था का नाम चौथी तुरीय है। जहाँ न भीतर का ज्ञान है न बाहर का ज्ञान है और न भीतर-बाहर का ज्ञान है। ऐसी जो सहज अवस्था है जिसे कोई नाम भी नहीं दिया जा सकता, उसी का नाम त्रयसाक्षी कहा गया है। केवल तुरीय तो इसलिए कहा गया है कि जो तीनों अवस्थाओं का साक्षी है।

ऐसी अनामी-अवस्था के धनी महापुरुषों के पावन चरणों में श्रद्धावत बार-बार प्रणाम करते हुए हर्ष का अनुभव कर रहा हूँ। ऐसी साधना में रत दिन-रात अभ्यास करने वाले साधकों को भी मेरा हृदय से प्रणाम!

ओम्! ओम्!! ओम्!!!

जीवन बड़ा अजीब होता है। कई बार उसकी परतों में से हम जिस रंग को खोजते हैं, वह नहीं निकलता, पर कोई ऐसा रंग निकल आता है जो उससे भी अधिक खूबसूरत होता है।

- अमृता प्रीतम

अहंशून्यता पर ही गुरु-कृपा

– संकलित

भगवान् कृष्ण की अनन्य भक्ति ही उनका जीवन बन गई थी। कृष्ण नाम में उनकी तल्लीनता-तन्मयता औरों को भी कृष्णप्रेम में विभोर कर देती। प्रभु से प्रेम करना उन्हें किसी ने सिखाया नहीं था। यह तो उनका अंत: स्फुरित भाव था, जो बचपन में ही जग पड़ा था। सौराष्ट्र के घोघावदर गाँव में जगदयाल एवं उनकी धर्मप्राण पत्नी शामबाई की वह लाड़ली संतान थे। माता-पिता ने उन्हें बहुत प्यार से पाला-पोसा। वे अपने पुत्र की हर इच्छा पूरी करने की कोशिश करते। परन्तु वे तो जैसे किसी अन्य लोक में विचरते थे। कृष्ण-स्मरण में न तो उन्हें अपनी देह की सुधि रहती और न ही खाने-पीने की। उनके ये हाल देखकर उनके माता-पिता ने यह अनुमान लगा लिया कि उनके बालक के पूर्व जन्म के संस्कार उसे निर्दिष्ट दिशा में लिए जा रहे हैं। उन्होंने भी निश्चय किया कि वे अपने पुत्र की तप-साधना और ईश्वरप्रेम में बाधक नहीं बनेंगे।

उनके गाँव में एक दिन श्रीमद्भागवत कथा का आयोजन हुआ। वे भी गए। कथावाचक महोदय कह रहे थे-कृष्ण-प्रेम तो अहंशून्य अंतर्चेतना में पनपता है और यह अहंशून्यता तो सद्गुरु के कृपाप्रसाद से मिलती है। उन्हें लगा मानो उन्हें जीवनदृष्टि मिल गई। अब उन्हें सद्गुरु की खोज थी। इसी खोज ने उन्हें जामनगर के संत मोरार साहब के पास पहुँचाया।

संत मोरार साहब जामनगर के राजा रणमल के राजगुरु थे। वे महान् तपस्वी, अंतर्दृष्टि संपन्न एवं योग-ऐश्वर्य से विभूषित संत थे। पर वे एक बहुत बड़ी रियासत के राजगुरु थे, इसीलिए अनेक लोग, विशेष करके धर्माधिकारी उनकी ख्याति से मन-ही-मन गहरी ईष्या करते थे। इस ईर्ष्या ने उनकी मानसिक वृत्तियों को कलुषित एवं प्रदूषित कर दिया था। इसी दूषित मनोवृत्ति की वजह से वे सदा ही उनकी हत्या का प्रयास करते रहते थे। एक के बाद एक अनेक प्रयास करते, परन्तु भगवत्कृपा से वे सभी असफल हो जाते और मोरार जी का बाल भी बाँका न होता। इन प्रयत्नों के लिये शायद यही कहना होगा कि धर्म का शुद्ध स्वरूप, धर्म के ध्वजाधारकों, ठेकेदारों को कभी पसंद नहीं आया।

लेकिन वे तो अपनी सच्ची श्रद्धा एवं निश्छल भक्ति को लेकर मोरार साहब के पास गए थे। मोरार साहब ने भी उनके बालक मन में ईश्वरप्रेम की सच्ची प्यास देखी थी। वे तो गुरु-भक्ति को ही ईश्वर-भक्ति मान अपने सद्गुरु मोरार साहब की सेवा किया करते। उन्हीं के साथ देवदर्शन करने जाते और गुरु की गायों को जंगल में चराने ले जाते।

एक दिन ईर्ष्यालु धर्माधिकारी और उसके कुछ चाटुकारों ने मोरार साहब के पूजा-पुष्पों में एक जहरीला नाग छिपा दिया। शाम के समय अनेक स्थानों से फूलों की टोकरियाँ सबेरे की पूजा के लिये आती थीं। मोरार साहब भी प्रत्येक टोकरी में से थोड़े-थोड़े फूल लेकर देव मंदिर में चढ़ा आते थे।

उस दिन एक बड़ी-सी टोकरी में चंपे का हार देखकर वे बोले, देख तो बेटा जीवण, यह हार कितना सुन्दर है।

जीवण उस समय गायों को घास खिला रहा था। उसने वहीं से जवाब दिया, बहुत सुन्दर है, महाराज।

ले, सुन्दर है तो तू ही इसे पहन ले! कहकर मोरार साहब ने उनके गले में हार डाल दिया।

हार जब गले में आया, तब उन्हें पता चला, यह हार नहीं, बल्कि फूलों में छिपा हुआ नाग है। किन्तु उनमें अपने गुरु के प्रति अपूर्व विश्वास था, उन्होंने सोचा कि गुरु ने प्रेम से जो पहना दिया, उसे निकाला कैसे जा सकता है। वे तो निर्भयतापूर्वक हार को पहने हुए गुरु के साथ मंदिर की ओर चल पड़े। मंदिर में दाखिल होकर

जैसे ही उन्होंने शिवजी को दंडवत प्रणाम किया, नाग झटपट दौड़कर शिवलिंग से लिपट गया। जीवण मंत्रमुग्ध होकर प्रणामी मुद्रा में यह अद्भुत दृश्य देखते रह गए।

संत मोरार साहब ने उन्हें उठाकर अपने सीने से लगा लिया और वे उनके साथ अपने निवास की ओर चल पड़े। चलते हुए गुरु और शिष्य दोनों के ही नेत्रों में भावबिन्दु छलक रहे थे।

एक दिन सद्गुरु की प्रेरणा से जीवण ने आस-पास के पाँच गाँवों की ओर से मिला हुआ पूजा का निमंत्रण स्वीकार कर लिया। पर जब प्रस्थान का समय आया, तो अपने गुरुदेव को आराम से लेटे हुए देखकर उन्हें आश्चर्य हुआ। जब गुरुदेव खर्राटे लेने लगे, तब वे धैर्य खो बैठे और गुरुदेव की कीर्त्तिरक्षा के लिये घोड़ी पर सवार होकर पास वाले गाँव में पहुँच गए।

गाँव में पहुँचकर तो उनका आश्चर्य दुगना हो गया। वहाँ उन्होंने देखा कि उनके गुरुदेव एक खाट पर बैठे एकतारा बजा रहे थे। वह तुरन्त वहाँ से दूसरे गाँव की ओर चल पड़े। इस दूसरे गाँव में पहुँचकर उनका आश्चर्य और बढ़ गया। यहाँ उनके सद्गुरु पूजा करने में लगे थे। इस अचरज से परेशान जीवण ने फिर से घोड़े की पीठ पर सवारी की और थोड़े ही समय में तीसरे गाँव पहुँच गए। नियत स्थान पर पहुँचने पर देखा कि उनके श्रद्धेय गुरु यहाँ भक्तों के साथ कीर्तन कर रहे थे।

अब तो उनका आश्चर्य सारी सीमाएँ पार कर गया। फिर भी वह चौथे गाँव की ओर चल पड़े। यहाँ जब वे आमंत्रित स्थान पर पहुँचे तो देखा कि गुरुदेव श्रोताओं को भागवत् कथा सुना रहे थे। अब पाँचवें स्थान की बारी थी। यहाँ पहुँचने पर उन्होंने देखा कि गुरुदेव श्रद्धालुजनों के साथ भगवान् की आरती कर रहे हैं। इस प्रकार पाँचों गाँवों का परिभ्रमण कर जब वह आश्चर्यचकित मन से जामनगर अपने गुरुदेव के निवास स्थान पर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि गुरुदेव संत मोरार साहब वहाँ पर भी प्रसाद का थाल लिए दरवाजे पर खड़े-खड़े स्नेह से उसे देख रहे हैं।

बहुत थक गया होगा, बेटा! जीवण को घोड़े से उतरते हुए देखकर मोरार साहब कहने लगे-ले थोड़ा-सा जलपान कर ले।

जीवण लज्जित होकर गुरुदेव के चरणों में गिर पड़े। वह अपने परम सद्गुरु के विराट् स्वरूप को देखकर जहाँ भाविभोर थे, वहीं उन्हें अपनी अज्ञानता पर लज्जा आ रही थी। वह उनसे हाथ जोड़कर क्षमायाचना करने लगे।

बेटा जीवण! मोरार साहब ने अपने शिष्य के माथे पर हाथ रखते हुए कहा, ''तू परेशान क्यों है? आखिर इतनी सारी भागदौड़ तूने मेरे ही काम के लिये की।''

''नहीं प्रभु!'' जीवन श्रद्धा के अतिरेक में सिसकते हुए बोले, ''शिष्य का सबसे बड़ा अपराध उसकी अहमन्यता तब होती है, जब वह यह समझ लेता है कि वह गुरु का महत्त्वपूर्ण काम कर रहा है अथवा उसके बिना गुरु का काम नहीं होगा। हे सद्गुरुदेव! शिष्य तो गुरु के पास अहं शून्य होने के लिये आता है और मैं तो अपने अहं का पोषण करने लगा था।''

मोरार साहब जीवण की इस भक्ति से प्रसन्न हो गए, बोले, ''बेटा जीवण तुम शोक न करो। तुम्हारी सभी परीक्षाएँ पूरी हुईं। मेरे आशीष से तुम अब से सर्वथा अहंशून्य होगे और तुम्हें प्रभु श्रीकृष्ण का निर्मल प्रेम प्राप्त होगा।'' सद्गुरु के ये वाक्य उनके जीवन में पूरी तरह सार्थक हुए। उन्होंने भी अपनी सारी उपलब्धियों का श्रेय 'गुरुकृपा' को ही दिया। उनके प्रत्येक भजनकी समाप्ति 'गुरु प्रताप' से ही होती है। उनका अनमोल वचन है, 'गुरुकृपा' ही शिष्य के जीवन में ईश्वरकृपा बनकर अवतरित होती है।

✲

जिसे धर्म की शक्ति पर, धर्म स्वरूप भगवान की अनन्त करुणा पर, पूर्ण विश्वास है, नैराशय का दुख उसके पास नहीं फटक सकता।

- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

संविधान

– स्वामी गोपाल आनन्द बाबा

शासन-प्रशासन को सुचारू रूप से चलाने के लिये सुराज्य व्यवस्था स्थापित करने के लिये जो नियम-उपनियम, विधान तय किए जाते या बनाए जाते हैं उसे ही संविधान कहते हैं। इसमें शासक, शासन तंत्र व शासित के अधिकार व कर्तव्य तथा उनका अनुपालन उल्लेखित रहता है। भारतवर्ष में 24 स्मृति ग्रंथों की रचना विभिन्न ऋषियों-मनीषियों द्वारा की गई थी जो वास्तव में संविधान ही है। इनमें सर्वाधिक मान्यता मनुस्मृति को दी गई। ईसा पूर्व दूसरी शताब्दी में इसका दसवां संस्करण व ईस्वीसन के प्रारम्भ के समय में 11वां संस्करण व ई. सन की दूसरी सदी में 12वां संस्करण प्रकट किया गया। जिससे इसमें इस काल की भी अनेक बातों का समावेश संस्करणकर्ताओं ने किया। फिर भी यह समाज संचालन का आधार रहा।

भगवान श्रीकृष्ण के मुखारबिंद से निकली हुई श्रीमदभग्वदगीता को संपूर्ण मानव जगत का आचारशास्त्र स्वीकारा गया है। इसमें कहा गया है कि सृष्टि के आदि में परमात्मा ने स्वयं इसे मनु को प्रदान किया था। मनु ने इसे इक्ष्वाकु को दिया और इक्ष्वाकु से इसे राजर्षियों ने प्राप्त किया और उनसे यह संपूर्ण ज्ञान जगत में व्याप्त हुआ। कालक्रम से धीरे-धीरे यह ज्ञान लुप्त प्राय हो गया था जिसे संसार की भलाई के लिये एक बार पुन: उसी ज्ञान को प्रकट कर रहा हूँ। अत: वास्तविक मनुस्मृति गीता है। इसमें दिया है कि चारवर्ण का निर्माण मैंने ही गुण कर्म के आधार पर किया है। लोकमान्य तिलक गीता को कर्मशास्त्र, निम्बार्काचार्य भक्तिशास्त्र, आद्य शंकराचार्य ज्ञान शास्त्र और आचार्य श्रीराम शर्मा जीवन शास्त्र मानते हैं।

वैदिक ग्रंथों में राज्याभिषेक के मंत्रों में पाँच प्रकार के राज्यों का वर्णन आता है, यथा 1. राज्य, 2. भौज्य, 3. वैराग्य, 4. स्वराज्य, 4. साम्राज्य, इनमें राज्य आदि प्रथम चार राज्य व्यवस्थाएँ जनतांत्रिक थी, जबकि पांचवी साम्राज्य यानि विशुद्ध राजतंत्र जिसे निंदनीय माना जाता था। राज्य का प्रमुख राजा था जो पौर और जनपदों द्वारा चुना जाता था। भौज्य व्यवस्था वर्तमान लोककल्याणकारी राज्य की तरह थी। लोकतंत्र के स्थान पर उसमें लोक कल्याण पर बल दिया जाता था। वैराग्य व्यवस्था का प्रमुख विराट कहलाता था। इसमें सभी नागरिक अपने अधिकार व कर्तव्य का पालन स्वत: करते थे, धर्म में स्थिर होते थे। वहाँ कोई दंड व्यवस्था की आवश्यकता नहीं होती थी। स्वराज्य को सर्वोत्तम माना गया। इसका प्रमुख स्वराट होता था। यह प्रत्यक्ष जनतंत्र था।

भारतवर्ष के प्राचीन गणराज्य :- 1. वृष्णि (अंधकवृष्णि), 2. शिवि (सिवि), 3. शाक्य, 4. लिच्छिवि, 5. मल्ल, 6. वज्जिागण, 7. कठ, 8. अम्बष्ट, 9. मालव, 10. क्षुद्रक, 11. मद्र (भद्रा), 12. अर्जुनायन, 13. राजन्य, 14. यौधेय, 15. औदुम्बर, 16. कुविन्द, 17. विदेह, 18. न्यास, 19. पत्तल, 20. कोकिय, 21. मोरिय, 22. भग, 23. बुलि आदि। यद्यपि प्राचीन भारत के किसी राज्य में पृथक कोई ऐसा संविधान नहीं था जिसको हम आधुनिक अर्थ में लिखित संविधान कह सकें। सूत्रों, धर्म-शास्त्रों, नीतिशास्त्रों और अर्थशास्त्र में जो राज्य, राजा तथा प्रजा से संबंधित विधियाँ मिलती हैं वे किसी एक राज्य के लिये नहीं बनाई गई थीं। वस्तुत: उन विधियों की व्याख्या करके एक आदर्श संविधान प्रस्तुत कर दिया गया था। प्रजा का हित इनका सर्वोपरी लक्ष्य था। राजा अथवा राज्य की उत्पत्ति लोक कल्याण की भावना से ही अनुप्राणित थी। सभा और समिति तथा पंचजन्य या पंचक्षिति की मान्यता थी। आधुनिक लोकतांत्रित शासन, वास्तव में संविधान का शासन है। लोकतंत्र में शासक स्वेच्छाधारी न हों, जो मन में आए सो न करें, इसके लिये शासन के नियमों और आदर्शों को संहिताबद्ध किया जाता है। वर्तमान विद्वानों की मान्यता के अनुसार लिखित इतिहास के दौरान में अरस्तू 350 ईसा पूर्व ने सर्वप्रथम

साधारण कानून और संवैधानिक कानून के बीच औपचारिक अंतर को स्पष्ट किया और संविधान के विचारों को स्थापित करते हुए संवैधानिक सरकार के विभिन्न प्रारूपों को वर्गीकृत करने का प्रयास किया था। उन्होंने अपने समय के विभिन्न संविधान का भी उल्लेख किया है। रोमवासियों ने सबसे पहले 450 ईसा पूर्व में टवेल्व टेबल नाम से अपने संविधान को संहिताबद्ध किया था। जापान में 604 ई. में राजकुमार शोतोकु द्वारा लिखा गया सेवेंटीन आर्टिकल कांस्टीट्यूटशन, एशिया के प्रारम्भिक संविधान में से एक है।

प्राचीन भारत में ईसा पूर्व तीसरी शताब्दी में सम्राट प्रियदर्शी अशोक मौर्य के शिलालेखों द्वारा शासन के नियमों को स्थापित किया गया था। हमारे भारत में मनुस्मृति का प्रयोग एक विधि संहिता की तरह किया जाता रहा है। इस्लाम में पैगम्बर हजरत मोहम्मद ने भी इस संबंध में एक प्रारूप दिया था। जिसे मदीना का संविधान के रूप में जाना जाता है। वास्तव में किसी देश का संविधान उसकी राजनीतिक व्यवस्था का वह ढांचा निर्धारित करता है जिसके अंतर्गत उसकी जनता शासित होती है। इसमें शासन के प्रमुख अंगों की शक्तियों के साथ उसकी भूमिका तय की जाती है। ज्ञातव्य है कि प्राचीन इतिहास में भी शासन के लिये ऐसी संहिताओं का उल्लेख मिलता है, लेकिन संविधान आधुनिक शासन प्रणाली की ही विशेष पहचान है।

सन् 1877 ई. में जन. अर्नेष्ट डि. सार्जेक ने इराक में खुदाई की तब उन्हें प्राचीनतम कोड ऑफ जस्टिस के साक्ष्य मिले थे। जिसे सुमेरियाई राजा उरूकागिना द्वारा संभवत: 2300 ईसा पूर्व में जारी किया गया था। ध्यातव्य है कि आज तक इसका लिखित स्वरूप उपलब्ध नहीं हुआ है। इसके बाद कई शासकों के लिखित कानूनों के साक्ष्य दुनिया के विभिन्न हिस्सों में पाए गए हैं। इनमें से बेबिलोनिया के हम्मूरानी की संहिता, हिती कोड और असीरियाई कोड को प्राचीनकालीन संविधानों में प्रमुख माना जाता है। इससे पूर्व 621 ईसा पूर्व में एथेंस में तत्कालीन शासक ड्रैकों ने अपराधियों को कड़ी से कड़ी सजा देने के विचार से मौखिक कानूनों को संहिताबद्ध किया गया था। वर्तमान काल में अत्यधिक कड़े कानूनों को बहुधा ड्रैकोनियन के नाम से जाना जाता है। विश्व का सर्वाधिक प्राचीन लिखित विधान जिसके आधार पर किसी देश का शासन चलाया जा रहा है, वह है लिगेस स्टैट्यूटे खिब्लिकाए सैकटो मैरिजी। सैनमैरिनो का शासन आज भी इसके आधार पर चलाया जाता है। इसे 1600 ई. के आसपास लिखा गया था। 1639 ई. में कॉलोनी ऑफ कनेक्टीवट ने फण्डामेंटल ऑर्डर्स नाम के विधान पत्र को अंगीकार किया था। यह उत्तरी अमेरिका का प्रथम संविधान माना जा सकता है। अमेरिका में 13 ब्रिटिश उपनिवेशों ने अमेरिकी क्रान्ति के समय 1776 ई. और 1777 ई. में अपना संविधान अंगीकार किया था।

ज्ञानोदय के काल में थॉमस हॉब्स, रूसो, जॉन, लॉक जैसे दार्शनिकों ने ज्ञानोदय संविधान मॉडल का विकास किया था। इसमें कहा गया था कि संवैधानिक सरकारों को स्थिर, लचीला, जवाबदेह, पारदर्शी और जन प्रतिनिधि मूलक होना चाहिए। एक प्रकार से यही आदर्श आधुनिक काल के सभी संविधान को प्रेरित करते हैं। आज हम संविधान का जो प्रारूप देखते हैं। वह सदियों से अपने लिये अच्छी शासन व्यवस्था प्राप्त करने की इच्छा का परिणाम है। भारत का वर्तमान संविधान भी ऐसा ही एक संविधान है।

प्राचीन भारत में धर्म के शासन की संकल्पना विधि के शासन या नियंत्रित सरकार की संकल्पना से भिन्न नहीं थी। ऋग्वेद, अथर्ववेद, मनुस्मृति से लेकर उशना स्मृति तक, एतरेय ब्राह्मण, महाभारत, पाणिनी की अष्टाध्यायी, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, अशोक स्तंभों पर उत्कीर्ण शिलालेख, बौद्ध व जैन ग्रन्थ आदि में सभा, समिति, ग्रामणी, महत्व, जनपद, पौर, पंजजन्य, पंचक्षिति सहित गणतंत्रों का उल्लेख किया गया है। आधुनिक मान्यता के अनुसार 10वीं सदी ई. में किन्ही शुक्राचार्य ने नीतिसार की रचना की, जो संविधान पर लिखी गई ग्रंथ है। इसमें केन्द्रीय सरकार के संगठन एवं ग्रामीण तथा नगरीय जीवन, राजा की परिषद और सरकार के विभिन्न अंगों का वर्णन है।

अपनी बात

साधना कोई ऐसी बात नहीं है कि हमने समझा और हो गई। ऐसी बात नहीं है कि कभी फुर्सत में चाहा और हो गई। जीवन की छोटी-छोटी चीजों को पाने के लिये भी हमें संकल्प करना होता है। उसे पाने के लिये लगना होता है। आत्मा साक्षात् के लिये, सत्य की उपलब्धि के लिये हम अक्सर इच्छा करते हैं लेकिन संकल्प नहीं करते। इच्छा और संकल्प में फर्क है। इच्छा करना कि आत्मा मिल जाए एक बात है और संकल्प करना कि आत्मा को पाऊँगा बिल्कुल दूसरी बात है। इच्छा तो कोई भी कर लेता है, संकल्प कोई नहीं करता। इच्छा करने वालों को भ्रम होता होगा कि हमने आत्मा को पाना चाहा पर मिलती तो नहीं है। संकल्प का अर्थ है कि आप अपने अन्त:जीवन में यह निर्णय ले रहे हैं, विवेकपूर्ण, कि अब आपका जीवन आप ऐसे चलाएंगे, सतत् इस केन्द्र पर चलाएंगे, आपको एक दिशा में गतिमान होना है। गतिमान होने का संकल्प लेते ही, इस अंत: प्रतिज्ञा के करते ही आपको भीतर अनेक शक्तियाँ जाग्रत होती मालूम होगी, जो मात्र इच्छा करने से जाग्रत नहीं होती हैं। जब भी कोई इच्छा संकल्प में परिणत हो जाती है, तभी आप अपने भीतर कुछ सोई हुई शक्तियों को जागता हुआ अनुभव करते हैं। जो आपके लिये सहयोगी हो जाती हैं। जो मात्र इच्छा रह जाती है, वह केवल मन का एक विकार है। वह कभी सक्रिय शक्ति नहीं बन पाती।

जिज्ञासा और मुमुक्षा, जिज्ञासु और मुमुक्षु में यही अंतर है। जिज्ञासा का अर्थ है, हम जानना चाहते हैं, क्या है? जैसे वह समाप्त होगी, हम दूसरी बात जानना चाहेंगे कि क्या है? फिर तीसरी बात जानना चाहेंगे। इन प्रश्नों में मुमुक्षा कम है, जिज्ञासा ज्यादा है। जिज्ञासाएँ तो ठीक हैं। मन बहुत-सी बातें नहीं जानता तो पूछना चाहता है। लेकिन इसमें मुमुक्षा नहीं है, ये आपको मुमुक्षु नहीं बनाती। मुमुक्षु का मतलब भिन्न है। उसका अर्थ है, हम होना चाहते हैं। केवल दिमाग की खुजलाहट नहीं है जिसको हल कर लेना है। उसका अर्थ है कि हमारे जीवन पर संकट है, हम उस संकट को परिवर्तित करना चाहते हैं। जिज्ञासा बालपन है, मुमुक्षा प्रौढता है। अब जानने के लिये उत्सुक नहीं रह जाते, हम 'होने' के लिये उत्सुक हो जाते हैं। जानना केवल इच्छा है और 'होना' संकल्प मांगता है।

साधना के जीवन में प्रवेश से पूर्व यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि हमारी जिज्ञासाएँ तो नहीं हैं। अगर जिज्ञासाएँ है तो साधना की बजाए शास्त्रों में प्रवेश करना अच्छा है। पश्चिम की जो फिलोसिफी है, जिज्ञासा है और पूरब का जो दर्शन है वह जिज्ञासा नहीं है। इसलिए दोनों में जमीन आसमान का फर्क है। उनका कोई सम्बन्ध नहीं। पश्चिम की फिलोसिफी का जो अनुसांगिक अंग है वह तर्क और लॉजिक है। पूरब के दर्शन का जो अनुसांगिक अंग है वह तर्क और लॉजिक नहीं है, वह योग और साधना है। पश्चिम की फिलोसिफी के साथ योग विकसित नहीं हुआ। वहाँ का कोई दार्शनिक योगी नहीं है। और पूरब का कोई दार्शनिक नहीं है जो योगी न हो। कृष्ण ने, बुद्ध ने, महावीर ने, शंकर ने, पतंजलि ने जो चर्चा की है वह फिलोसिफी नहीं है। वह साधना है, जिज्ञासा नहीं है। यह तो इस बात की चेष्टा है कि हम परिवर्तित होना चाहते हैं। हम कुछ और होना चाहते हैं। जो है वह योग्य नहीं है, हम कुछ और होना चाहते हैं। एक गहरा संकल्प है। पूरी अन्तरात्मा का यह संकल्प करना है कि मैं जैसा हूँ, व्यर्थ हूँ और मुझे सार्थक होना है। तब जिज्ञासा अनुसांगिक होगी और मुमुक्षा प्राथमिक होगी। यानी वह साधना के लिये तलाश होगी। बौद्धिक व्यायाम चाहे जीवन भर करते रहें उसका कोई परिणाम नहीं होगा। लेकिन अगर आकांक्षा है, मुमुक्षा है तो जैसा जीवन है वह व्यर्थ है, मुझे सार्थक जीवन खोजना है।

किसी व्यक्ति की गर्दन पकड़ कर उसे पानी में

डूबा दिया जाय तो वह छूटने को छटपटाता है। पूरे प्राण का संकल्प जाग्रत होता है कि मैं बाहर निकलूं। अपनी पूरी शक्ति लगाकर उस दबाव से छुटकारा पाना चाहता है, बाहर आना चाहता है। पानी के भीतर कोई आपको दबा दे, तब आपको प्राण से जो संकल्प करना पड़े उस संकल्प से जीवन साधना में प्रवेश होता है। एक बीज जब फूटता है तो कितने संकल्प से फूटता होगा। जब जमीन की पर्त को तोड़ता है और जब बीज के खोल को तोड़कर अंकुर बाहर निकलता है तो कितने संकल्प की जरूरत पड़ती होगी। उससे भी ज्यादा संकल्प की जरूरत तब पड़ती है जब एक व्यक्ति व्यर्थता की खोल को तोड़कर सार्थक जीवन की ओर प्रविष्ट होता है। सारी शक्ति इकट्ठी करके जब वह संकल्प लेता है, तो प्रवेश पाता है। साधना तभी फलवती होगी।

संघ कार्य तो सामाजिक कार्य भी है और अपने जीवन को सार्थकता में परिवर्तित करने की साधना भी है अत: संकल्प अत्यन्त आवश्यक है।

⁂

पृष्ठ 13 का शेष

साधना की प्रतिक्रियाएँ

लेकिन इन सबके मूल में एक ईश्वरीय तत्त्व सदा विद्यमान रहता है जो बहुत-सी ईश्वरेतर बातों के साथ धुल-मिल गया है। स्वर्ण को किट और मैल से अलग करना होगा। आध्यात्मिक जीवन का यही लक्ष्य है।

हमारे मनोभावों के विभिन्न पक्षों का तथा इन मनोभावों के मन तथा चेतना के केन्द्र पर प्रभाव का अध्ययन करके हम प्राय: उनका वास्तविक स्वरूप तथा मूल्य जान सकते हैं। उच्चतर केन्द्रों से सम्बन्धित भावनाएँ निम्न स्तर के विचारों के साथ संयुक्त हो सकती हैं तथा निकृष्टतम प्रकार की वासना के रूप में दूषित हो सकती हैं। अत: हमें लोगों के साथ मिलने-जुलने में सदा सावधान रहना चाहिए। और जैसा कि तुम जानते हो, स्त्री-पुरुष सदा जैसे दिखते हैं, वैसे नहीं होते। हम जितनी ही अधिक सूक्ष्मता के साथ अपना तथा दूसरों का अध्ययन करते हैं, उतना ही इस सत्य का अनुभव करते हैं; कभी-कभी इससे हमें दु:ख भी होता है।

इस विषय में एक महत्त्वपूर्ण बात ध्यान रखो। अपना मूल्यांकन करते समय हमें अपने श्रेष्ठतम नहीं, बल्कि अपने दुर्बलतम पक्ष को सदा मापदण्ड बनाना चाहिए। जिस प्रकार एक जंजीर की ताकत उसकी दुर्बलतम कड़ी पर निर्भर करती है, उसी तरह हमारी दुर्बलता हमारी आध्यात्मिक प्रगति, हमारे सुख और दु:ख का निर्धारण करती है। हमें अपने श्रेष्ठ गुणों के बारे में अत्यधिक गौरवान्वित अथवा अतिविश्वस्त नहीं होना चाहिए। हमारी बहुत-सी समस्याएँ इसी कारण पैदा होती है।

अनिश्चितता की घड़ी से गुजरते हुए भी हमें समय का श्रेष्ठतम सदुपयोग करना चाहिए। जब अशुभ की शक्ति बहुत अधिक हो तो उसके कुछ मात्रा में क्षीण होने की प्रतीक्षा करनी पड़ती है। यह जानते हुए कि शुभ दिन आने वाले हैं, हमें अपना स्वधर्म तथा साधना करते रहना चाहिए। हमें हम पर वर्षित हुई भगवत्कृपा का पूरा लाभ उठाना चाहिए तथा जीवन में कुछ स्थायी और ठोस उपलब्धि करनी चाहिए, जिससे जब कभी ऐसा लगे कि हम कृपा से कुछ समय के लिये वंचित हो गए हैं, तब हम उसे पकड़कर रह सकें। प्रातिभासिक जगत् में शान्ति और सुरक्षा मत खोजो। वह नित्य परिवर्तनशील है। यदि तुम उसमें सुख खोजोगे तो तुम दु:ख से दूर नहीं रह सकोगे।

वस्तुत: कोरी भावनाओं के स्तर पर कोई सुरक्षा सम्भव नहीं है, भले ही वे आत्मा के विकास के लिये कितनी ही आवश्यक क्यों न हों। हमारी भावनाओं को भगवत् चेतना पर आधारित और उसके साथ जुड़ी होना चाहिए। तभी हम सच्ची स्थिरता प्राप्त करते हैं और भयमुक्त हो सकते हैं। अवश्य, हम इस आदर्श को धीरे-धीरे अनेक असफलताओं और पराजयों से गुजरते हुए ही प्राप्त कर कर सकते हैं।

(क्रमश:)

– : शिविर सूचना :–

यह सूचित करते हुए अत्यन्त हर्ष है कि श्री क्षत्रिय युवक संघ के आगामी प्रशिक्षण शिविर निम्न प्रकार से होने जा रहे हैं–

क्र.सं.	शिविर	समय	मार्ग आदि	
01.	उ.प्र.शि.	18.05.2019 से 28.05.2019	गनोड़ा (बाँसवाड़ा)	– लिटिल एंजल्स सीनियर सैकण्ड्री स्कूल। कल्याणनगर, गनोड़ा (लांबापारड़ा) जिला–बासंवाड़ा।

शिविर स्थल उदयपुर रतलाम मार्ग पर उदयपुर से 125 कि.मी. व रतलाम से 120 कि.मी. दूर है। बाँसवाड़ा से 35 कि.मी. दूर है। गनोड़ा (लांबापारड़ा) के लिये जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, बाड़मेर, अहमदाबाद से सीधी बस सेवा उपलब्ध है। रेल सेवा के लिये उदयपुर या रतलाम रेल्वे स्टेशन उतरें, वहाँ से बसें उपलब्ध हैं। शिविर स्थल गनोड़ा बस स्टैण्ड से 1 कि.मी. दूर स्थित है। 18 मार्च को अपराह्न 12 बजे तक पहुँचना है। इस शिविर में 10वीं की परीक्षा दे चुके एवं 1 मा.प्र.शि. व 2 प्रा.प्र.शि. कर चुके शिविरार्थी ही शामिल हो सकेंगे। नीचे नोट में वर्णित गणवेश व सामग्री अनिवार्य रूप से लानी है। संघ साहित्य की झनकार, निर्देशिका एवं मेरी साधना पुस्तकें साथ लावें।

सम्पर्क सूत्र : 94145–66796, 99835–65520, 95879–68610

2.	उ.प्रा.शि. (बालिका)	31.05.2019 से 06.06.2019	पुष्कर (अजमेर)	– जयमल कोट पुष्कर। कम से कम 8वीं पास और पूर्व में शिविर की हुई बालिकाएँ ही आ सकती हैं। गणवेश लेकर आएँ।
3.	मिलन शिविर	07.06.2019 10.06.2019	बाड़मेर	– भारतीय ग्राम्य आनोकायन ट्रस्ट द्वारा संचालित आलोक आश्रम, गेहूं रोड़, बाड़मेर शिविर स्थान होगा। – आमंत्रित स्वयंसेवक ही आ सकेंगे। – आमंत्रित स्वयंसेवक पूरा शिविर न कर सकें तो कम–से–कम दो दिन के लिये आ सकते हैं।

शिविर में आने वाले युवक काला नीकर, सफेद कमीज या टीशर्ट, काली जूती या जूता व युवतियाँ केसरिया सलवार कमीज, कपड़े के काले जूते, मौसम के अनुसार बिस्तर (एक परिवार से दो जने हों तो अलग–अलग), पेन, डायरी, टॉर्च, रस्सी, चाकू, सूई–डोरा, कंघा, लोटा, थाली, कटोरी, चम्मच, गिलास साथ लेकर आवें। संघ साहित्य के अलावा कोई पत्र–पत्रिका, पुस्तकें एवं बहुमूल्य वस्तुएँ साथ ना लावें।

दीपसिंह बेण्यांकाबास
शिविर कार्यालय प्रमुख
श्री क्षत्रिय युवक संघ

जो मनुष्य अनुभव के दौर से होकर गुजरने से इन्कार करता है, मेहनत से भागकर आराम की जगह पर पहुँचने के लिये बेचैन है, उसकी यह बेचैनी ही इस बात का सबूत है कि वह अपने संगठन का अच्छा नेता नहीं बन सकता।

– रामधारीसिंह 'दिनकर'

भगवती मरु विकास संस्थान द्वारा संचालित

भगवती मरु बाल निकेतन माध्यमिक विद्यालय

झिंझिनयाली

संस्था प्रधानाध्यापक
रेमत सिंह झिंझिनयाली

मंत्री
तारेंद्र सिंह झिंझिनयाली

सौजन्य से : निम्ब सिंह झिंझिनयाली

मैसर्स : ईश्वरीय कंस्ट्रस्क्शन कंपनी
AA क्लास गवर्नमेंट कॉन्ट्रेक्टर

Roop Singh Rathore
9001272213
8209721181

Goldmedal
SWITCHES & SYSTEMS

Bhawani Enterprises
Opp. Panchayat Samiti,
Nehru Chowk, Bhopal Garh

जितेन्द्रसिंह "माँ जसोल"

कविषा मेडिकल

अस्पताल के सामने, भोपालगढ़

KM **कर्मवीर मेडिकल**

बस स्टेण्ड, बिलाड़ा रोड़,
भोपालगढ़

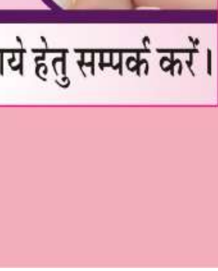

मो. 9414064247

कविषा टूर्स - टवेरा, बोलेरो, जीप किराये हेतु सम्पर्क करें।

मई, सन् 2019
वर्ष : 56, अंक : 05

समाचार पत्र पंजी.संख्या R.N.7127/60
डाक पंजीयन संख्या – Jaipur City /411/2017-19

संघशक्ति

ए–8, तारानगर, झोटवाड़ा,
जयपुर–302012
दूरभाष : 0141–2466353

E-mail : sanghshakti@gmail.com
Website : www.shrikys.org

श्रीमान्...

....

....

स्वत्वाधिकारी श्री संघशक्ति प्रकाशन प्रन्यास के लिये, मुद्रक व प्रकाशक, लक्ष्मणसिंह द्वारा ए–8, तारानगर, झोटवाड़ा, जयपुर से : गजेन्द्र प्रिन्टर्स, जैन मन्दिर सांगाकान, सांगों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर फोन : 2313462 में मुद्रित। सम्पादक–लक्ष्मणसिंह